Chapter अठारह

राजा इन्द्र का वध करने के लिए दिति का व्रत

इस अध्याय में कश्यप की पत्नी दिति की कथा है कि इन्द्र के वध के लिए पुत्र प्राप्त करने के निमित्त उसने किस प्रकार व्रत का पालन किया। इसमें यह भी उल्लेख है कि किस प्रकार इन्द्र ने दिति के गर्भ में ही पुत्र को खण्ड-खण्ड करके उस की योजना को विफल बनाने का प्रयास किया।

त्वष्टा तथा उसके वंशजों के प्रसंग में आदित्यों तथा अन्य देवताओं के वंश का वर्णन किया गया है। अदिति के पाँचवें पुत्र सविता की पत्नी पृश्नि के तीन पुत्रियाँ सावित्री, व्याहृति तथा त्रयी थीं एवं अग्निहोत्र, पशु, सोम, चातुर्मास्य तथा पंच महायज्ञ नामक महान् पुत्र हुए। भग की पत्नी सिद्धि के तीन पुत्र हुए, जिनके नाम महिमा, विभु तथा प्रभु थे तथा आशी नाम की एक कन्या भी उत्पन्न हुई। धाता की चार पत्नियों कुहू, सिनीवाली, राका तथा अनुमति से क्रमशः सायम्, दर्श, प्रातः तथा पूर्णमास नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। विधाता की पत्नी क्रिया से पाँच पुरीष्य उत्पन्न हुए जो पाँच प्रकार के अग्निदेवों के प्रतिनिधि थे। ब्रह्मा के मानस पुत्र भृगु ने पुत्र वरुण की पत्नी चर्षणी के गर्भ से जन्म लिया और ऋषि वाल्मीकि वरुण के वीर्य से उत्पन्न हुए। अगस्त्य तथा वसिष्ठ वरुण तथा मित्र के दो पुत्र थे। वे दोनों उर्वशी के रूप पर मोहित हो गये तो उनका वीर्य स्खलित हो गया जिसे मिट्टी के पात्र में रखा गया। उसी पात्र से अगस्त्य तथा वसिष्ठ की उत्पत्ति हुई। मित्र की पत्नी रेवती के गर्भ से तीन पुत्र हुए उत्सर्ग, अरिष्ठ तथा पिप्पल। अदिति के कुल बारह पुत्र हुए जिनमें इन्द्र ग्यारहवाँ था। इन्द्र की पत्नी का नाम पौलोमी (शची देवी) रखा गया। उसके तीन पुत्र हुए जयन्त, ऋषभ तथा मीढुष। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् स्वयं अपनी शक्ति से वामनदेव के रूप में प्रकट हुए। उनकी पत्नी कीर्ति के गर्भ से बृहत्श्लोक नामक पुत्र जन्मा। उसके प्रथम पुत्र का नाम सौभग था। यह अदिति के पुत्रों का विवरण है। श्रीभगवान् के अवतार आदित्य उरुक्रम का विवरण अष्टम स्कन्ध में दिया जायेगा।

इस अध्याय में दिति से उत्पन्न असुरों का भी विवरण दिया गया है। दिति के वंश में परम साधु-भक्त प्रह्लाद तथा उनके नाती बलि भी उत्पन्न हुए। हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष दिति के प्रथम पुत्र थे। हिरण्यकशिपु तथा उनकी पत्नी कयाधु के चार पुत्र हुए संह्लाद, अनुह्लाद, ह्लाद तथा प्रह्लाद। उनके एक पुत्री भी थी जिसका नाम सिंहिका था। विप्रचित नामक असुर के संयोग से सिंहिका के राहु नामक पुत्र हुआ जिसका शिरच्छेद श्रीभगवान् ने किया था। संह्लाद की पत्नी कृति से पंचजन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ह्लाद की पत्नी धमनि से वातापि और इल्वल नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। इल्वल ने वातापि को मेढा बनाकर उसे अगस्त्य को खाने के लिए दिया। अनुह्लाद की पत्नी सूर्या की कोख से बाष्कल तथा महिष नामक दो पुत्रों ने जन्म लिया। प्रह्लाद के पुत्र का नाम विरोचन था और पौत्र का नाम बलि महाराज। बलि महाराज के एक सौ पुत्र थे जिनमें बाण सबसे ज्येष्ठ था।

आदित्यों तथा अन्य देवताओं की वंशावली बताने के बाद शुकदेव गोस्वामी ने दिति के मरुत नामक पुत्रों का वर्णन किया है और यह बताया है किस प्रकार वे देवता-पद को प्राप्त हुए। इन्द्र की सहायता के लिए ही भगवान् विष्णु ने हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु का वध किया। अत: दिति को अत्यन्त ईर्ष्या हुई। इसी कारण वह ऐसा पुत्र चाहती थी जो इन्द्र का बध कर सके। उसने अपनी सेवा से कश्यप मुनि को मोहित किया जिससे वह उनसे इस कार्य को करने के लिए महान् पुत्र प्राप्त कर सके। वेद वाक्य *विद्वांसम् अपि कर्षति* के अनुसार कश्यपमुनि इस परम सुन्दरी अपनी पत्नी, से परम आकृष्ट हुए और उसकी किसी भी प्रार्थना को स्वीकार करने का वचन दे दिया। किन्तु जब उसने इन्द्र का बध करने वाले पुत्र के लिए प्रार्थना कि तो कश्यपमुनि ने अपने आपको धिक्कारा और अपनी पत्नी दिति से कहा कि वैष्णव अनुष्ठानों के अनुसार अपनी शुद्धि करे। जब कश्यप के उपदेश से दिति सेवा-भक्ति करने लगी, तो इन्द्र उसके मन्तव्य को समझ गया अत: वह उसके सभी कार्यकलापों का निरीक्षण करने लगा। एक दिन इन्द्र ने देखा कि वह सेवा कार्य से विचलित हो गई अत: वह उसके गर्भ में प्रविष्ट हो गया और उसके पुत्र को उनचास खण्डों में

काट डाला। इस प्रकार उनचास प्रकार के मरुत (वायु) प्रकट हुए किन्तु दिति ने वैष्णव अनुष्ठान किये थे इसलिए सभी पुत्र वैष्णव हो गये।

श्रीशुक उवाच
पृश्निस्तु पत्नी सवितुः सावित्रीं व्याहृतिं त्रयीम् ।
अग्निहोत्रं पशुं सोमं चातुर्मास्यं महामखान् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; पृश्निः—पृश्नि; तु—तब; पत्नी—भार्या; सवितुः—सविता की; सावित्रीम्—सावित्री; व्याहृतिम्—व्याहृति; त्रयीम्—त्रयी; अग्निहोत्रम्—अग्निहोत्र; पशुम्—पशु; सोमम्—सोम; चातुर्मास्यम्—चातुर्मास्य; महा-मखान्—पाँचों महायज्ञ।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा—पृश्नि, जो अदिति के बारह पुत्रों में से पाँचवें पुत्र सविता की पत्नी थी, तीन पुत्रियाँ सावित्री, व्याहृति तथा त्रयी और अग्निहोत्र, पशु, सोम, चार्तुमास्य तथा पंच महायज्ञ नामक पुत्र उत्पन्न हुए।

सिद्धिर्भगस्य भार्याङ्ग महिमानं विभुं प्रभुम् ।
आशिषं च वरारोहां कन्यां प्रासूत सुव्रताम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

सिद्धिः—सिद्धि; भगस्य—भग की; भार्या—पत्नी; अङ्ग—हे राजा; महिमानम्—महिमा; विभुम्—विभु; प्रभुम्—प्रभु; आशिषम्—आशीष; च—तथा; वरारोहाम्—अत्यन्त सुन्दरी; कन्याम्—पुत्री को; प्रासूत—जन्म दिया; सु-व्रताम्—सदाचारिणी।

हे राजन्! अदिति के छठे पुत्र भग की पत्नी का नाम सिद्धि था जिसके महिमा, विभु तथा प्रभु नामक तीन पुत्र तथा आशीष नामक एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई।

धातुः कुहूः सिनीवाली राका चानुमतिस्तथा ।
सायं दर्शमथ प्रातः पूर्णमासमनुक्रमात् ॥ ३ ॥
अग्नीन्पुरीष्यानाधत्त क्रियायां समनन्तरः ।
चर्षणी वरुणस्यासीद्यस्यां जातो भृगुः पुनः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

धातुः—धाता के; कुहूः—कुहू; सिनीवाली—सिनीवाली; राका—राका; च—तथा; अनुमतिः—अनुमति; तथा—भी; सायम्—सायम्; दर्शम्—दर्श; अथ—भी; प्रातः—प्रातः; पूर्णमासम्—पूर्णमास; अनुक्रमात्—क्रमशः; अग्नीन्—

अग्निदेव; पुरीष्यान्—पुरीष्य नामक; आधत्त—जन्म दिया; क्रियायाम्—क्रिया से; समनन्तरः—अगला पुत्र विधाता; चर्षणी—चर्षणी; वरुणस्य—वरुण का; आसीत्—था; यस्याम्—जिसमें; जातः—जन्म लिया; भृगुः—भृगु ने; पुनः—फिर।

अदिति के सातवें पुत्र धाता के चार पत्नियाँ थीं जिनके नाम थे कुहू, सिनीवाली, राका तथा अनुमति। इन चारों से क्रमशः सायम्, दर्श, प्रातः तथा पूर्णमास नामक चार पुत्र हुए। अदिति के आठवें पुत्र विधाता की पत्नी का नाम क्रिया था जिससे पुरीष्य नामक पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। अदिति के नवें पुत्र वरुण की पत्नी चर्षणी थी जिसके गर्भ से ब्रह्मा के पुत्र भृगु ने फिर जन्म लिया।

वाल्मीकिश्च महायोगी वल्मीकादभवत्किल ।
अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च मित्रावरुणयोरृषी ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

वाल्मीकिः—वाल्मीकि; च—तथा; महा-योगी—परम योगी; वल्मीकात्—बाँबी से; अभवत्—जन्म लिया; किल—निस्सन्देह; अगस्त्यः—अगस्त्य; च—तथा; वसिष्ठः—वशिष्ठ; च—भी; मित्रा-वरुणयोः—मित्र तथा वरुण दोनों के; ऋषी—दो ऋषि।

वरुण के वीर्य से परम योगी वाल्मीकि ने बाँबी से जन्म लिया। भृगु तथा वाल्मीकि वरुण के विशिष्ट पुत्र थे, जबकि अगस्त्य तथा वसिष्ठ ऋषि वरुण तथा मित्र (अदिति के दसवें पुत्र) के संयुक्त पुत्र थे।

रेतः सिषिचतुः कुम्भे उर्वश्याः सन्निधौ द्रुतम् ।
रेवत्यां मित्र उत्सर्गमरिष्टं पिप्पलं व्यधात् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

रेतः—वीर्य; सिषिचतुः—स्खलित; कुम्भे—घड़े में; उर्वश्याः—उर्वशी का; सन्निधौ—उपस्थिति में; द्रुतम्—उड़कर; रेवत्याम्—रेवती में; मित्रः—मित्र; उत्सर्गम्—उत्सर्गम्; अरिष्टम्—अरिष्ट; पिप्पलम्—पिप्पल; व्यधात्—जन्म लिया।

स्वर्ग-सुन्दरी उर्वशी को देखकर मित्र तथा वरुण दोनों का वीर्य स्खलित हो गया जिसे उन्होंने एक मिट्टी के पात्र में रख दिया। बाद में इसी पात्र से अगस्त्य तथा वसिष्ठ नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। ये मित्र तथा वरुण के संयुक्त (उभयनिष्ट) पुत्र हैं। मित्र को अपनी पत्नी रेवती से तीन पुत्र उत्पन्न हुए जिनके नाम उत्सर्ग, अरिष्ट तथा पिप्पल थे।

तात्पर्य : आधुनिक विज्ञान वीर्य को संसाधित करके टेस्ट ट्यूबों में जीवात्माएँ उत्पन्न करने में प्रयत्नशील हैं, किन्तु बहुत काल पहले पात्र में वीर्य को रखकर शिशु उत्पन्न करना सम्भव था।

पौलोम्यामिन्द्र आधत्त त्रीन्पुत्रानिति नः श्रुतम् ।
जयन्तमृषभं तात तृतीयं मीढुषं प्रभुः ॥ ७॥

शब्दार्थ

पौलोम्याम्—पौलोमी (शची देवी) ने; इन्द्रः—इन्द्र ने; आधत्त—उत्पन्न किया; त्रीन्—तीन; पुत्रान्—पुत्र; इति—इस प्रकार; नः—हमारे द्वारा; श्रुतम्—सुना हुआ; जयन्तम्—जयन्त; ऋषभम्—ऋषभ; तात—हे राजन्; तृतीयम्—तीसरा; मीढुषम्—मीढुष; प्रभुः—राजा।

हे राजा परीक्षित! अदिति के ग्यारहवें पुत्र एवं स्वर्गलोक के राजा इन्द्र की पत्नी पौलोमी के गर्भ से जयन्त, ऋषभ तथा मीढुष नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। ऐसा हमने सुना है।

उरुक्रमस्य देवस्य मायावामनरूपिणः ।
कीर्तौ पत्न्यां बृहच्छ्लोकस्तस्यासन्सौभगादयः ॥ ८॥

शब्दार्थ

उरुक्रमस्य—उरुक्रम की; देवस्य—भगवान् की; माया—अन्तरंगा शक्ति से; वामन-रूपिणः—वामन के रूप में; कीर्तौ—कीर्ति से; पत्न्याम्—अपनी पत्नी; बृहच्छ्लोकः—बृहत्श्लोक; तस्य—उसके; आसन्—थे; सौभग-आदयः—सौभग आदि पुत्र।

अनेक शक्तियों वाले पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपनी शक्ति से बौने (वामन) के रूप में प्रकट हुए जो अदिति के बारहवें पुत्र उरुक्रम कहलाते हैं। उनकी पत्नी कीर्ति के गर्भ से बृहत्श्लोक नामक एक पुत्र ने जन्म लिया जिसके सौभग इत्यादि कई पुत्र हुए।

तात्पर्य : जैसा कि *भगवद्गीता* (४.६) में भगवान् का वचन है

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया॥

''मैं अजन्मा, सब प्राणियों का ईश्वर और सच्चिदानन्द अविनाशी स्वरूप होते हुए भी युग युग में अपने आदि दिव्य रूप में प्रकट होता रहता हूँ।'' श्रीभगवान् अवतीर्ण होते हैं, तो उन्हें बहिरंगा शक्ति की सहायता की अपेक्षा नहीं होती क्योंकि वे अपनी स्वयं की शक्ति से यथार्थ रूप में प्रकट

होते हैं। यह आध्यात्मिक शक्ति माया भी कहलाती है। कहा गया है *अतो मायामयं विष्णुं प्रवदन्ति मनीषिण:* श्रीभगवान् द्वारा अंगीकृत शरीर मायामय कहलाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे बहिरंगा शक्ति से निर्मित हैं; इस माया का तात्पर्य उनकी अंतरंगा शक्ति से है।

तत्कर्मगुणवीर्याणि काश्यपस्य महात्मन: ।
पश्चाद्वक्ष्यामहेऽदित्यां यथैवावततार ह ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तत्—उसका; कर्म—कर्म; गुण—गुण; वीर्याणि—तथा शक्ति; काश्यपस्य—कश्यप के पुत्र के; महा-आत्मन:—परम आत्मा; पश्चात्—बाद में; वक्ष्यामहे—मैं वर्णन करूँगा; अदित्याम्—अदिति से; यथा—कैसे; एव—निश्चय ही; अवततार—अवतार लिया; ह—निस्सन्देह।

बाद में (आठवें स्कंध में) मैं यह वर्णन करूँगा कि किस प्रकार उरुक्रम अर्थात् भगवान् वामनदेव परम साधु कश्यप के पुत्र के रूप में प्रकट हुए और किस प्रकार तीनों लोकों को अपने पगों से नाप लिया। मैं उनके अपूर्व कर्मों, गुणों, शक्ति तथा अदिति के गर्भ से जन्म ग्रहण करने के सम्बन्ध में वर्णन करूँगा।

अथ कश्यपदायादान्दैतेयान्कीर्तयामि ते ।
यत्र भागवत: श्रीमान्प्रह्लादो बलिरेव च ॥ १० ॥

शब्दार्थ

अथ—अब; कश्यप-दायादान्—कश्यप के पुत्रों का; दैतेयान्—दिति से उत्पन्न; कीर्तयामि—वर्णन करूँगा; ते—तुमसे; यत्र—जहाँ; भागवत:—परम भक्त; श्री-मान्—यशस्वी; प्रह्लाद:—प्रह्लाद; बलि:—बलि; एव—निश्चय ही; च—भी।

अब मैं दिति के उन पुत्रों का वर्णन करूँगा जो कश्यप के द्वारा उत्पन्न किये गये किन्तु जो असुर बने। इस असुर वंश में परम भक्त प्रह्लाद महाराज तथा बलि महाराज प्रकट हुए। असुरों को दैत्य कहा जाता है क्योंकि वे दिति के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।

दितेर्द्वावेव दायादौ दैत्यदानववन्दितौ ।
हिरण्यकशिपुर्नाम हिरण्याक्षश्च कीर्तितौ ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

दितेः—दिति के; द्वौ—दो; एव—निश्चय ही; दायादौ—पुत्र; दैत्य-दानव—दैत्यों तथा दानवों के द्वारा; वन्दितौ—पूजित; हिरण्यकशिपुः—हिरण्यकशिपु; नाम—नामक; हिरण्याक्षः—हिरण्याक्ष; च—भी; कीर्तितौ—विख्यात।

सर्वप्रथम दिति के गर्भ से हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। ये दोनों अत्यन्त शक्तिशाली थे और दैत्यों तथा दानवों द्वारा पूजित थे।

हिरण्यकशिपोर्भार्या कयाधुर्नाम दानवी ।
जम्भस्य तनया सा तु सुषुवे चतुरः सुतान् ॥ १२॥
संह्रादं प्रागनुह्रादं ह्रादं प्रह्रादमेव च ।
तत्स्वसा सिंहिका नाम राहुं विप्रचितोऽग्रहीत् ॥ १३॥

शब्दार्थ

हिरण्यकशिपोः—हिरण्यकशिपु की; भार्या—पत्नी; कयाधुः—कयाधु; नाम—नामक; दानवी—दनु की संतान; जम्भस्य—जम्भ की; तनया—पुत्री; सा—उसने; तु—निस्सन्देह; सुषुवे—जन्म दिया; चतुरः—चार; सुतान्—पुत्रों को; संह्रादम्—संह्राद; प्राक्—पहले; अनुह्रादम्—अनुह्राद; ह्रादम्—ह्राद; प्रह्रादम्—प्रह्राद; एव—भी; च—तथा; तत्-स्वसा—उसकी बहन; सिंहिका—सिंहिका; नाम—नाम की; राहुम्—राहु को; विप्रचितः—विप्रचित से; अग्रहीत्—प्राप्त किया।

हिरण्यकशिपु की पत्नी कयाधु नाम से विख्यात थी। वह जम्भ की पुत्री एवं दनु की वंशज थी। उसके एक एक करके चार पुत्र हुए जिनके नाम संह्राद, अनुह्राद, ह्राद तथा प्रह्राद थे। इन चारों भाइयों की बहन का नाम सिंहिका था। उसने विप्रचित नामक असुर से ब्याह करके राहु नामक असुर को जन्म दिया।

शिरोऽहरद्यस्य हरिश्चक्रेण पिबतोऽमृतम् ।
संह्रादस्य कृतिर्भार्यासूत पञ्चजनं ततः ॥ १४॥

शब्दार्थ

शिरः—शीश; अहरत्—काट लिया; यस्य—जिसका; हरिः—हरि ने; चक्रेण—चक्र से; पिबतः—पीते हुए; अमृतम्—अमृत; संह्रादस्य—संह्राद की; कृतिः—कृति; भार्या—पत्नी ने; असूत—जन्म दिया; पञ्चजनम्—पंचजन; ततः—उससे।

जब राहु वेश बदलकर देवताओं के बीच में अमृत पी रहा था, तो भगवान् हरि ने उसका सिर काट लिया। संह्राद की पत्नी का नाम कृति था। इन दोनों के संयोग से कृति के पंचजन नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

ह्रादस्य धमनिर्भार्यासूत वातापिमिल्वलम् ।
योऽगस्त्याय त्वतिथये पेचे वातापिमिल्वलः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

ह्रादस्य—ह्लाद की; धमनिः—धमनि; भार्या—पत्नी; असूत—जन्म दिया; वातापिम्—वातापि; इल्वलम्—इल्वल को; यः—जो; अगस्त्याय—अगस्त्य के लिए; तु—लेकिन; अतिथये—अपने अतिथि; पेचे—पकाया; वातापिम्—वातापि को; इल्वलः—इल्वल ने।

ह्लाद की पत्नी का नाम धमनि था। उसने वातापि तथा इल्वल नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। जब अगस्त्य मुनि इल्वल के अतिथि बने तो उसने वातापि को, जो मेढे के रूप में था, पकाकर भोजन करवाया।

अनुह्लादस्य सूर्यायां बाष्कलो महिषस्तथा ।
विरोचनस्तु प्राह्लादिर्देव्यां तस्याभवद्बलिः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

अनुह्लादस्य—अनुह्लाद की; सूर्यायाम्—सूर्या से; बाष्कलः—बाष्कल; महिषः—महिष; तथा—और; विरोचनः—विरोचन; तु—निस्सन्देह; प्राह्लादिः—प्रह्लाद का पुत्र; देव्याम्—उसकी पत्नी से; तस्य—उसके; अभवत्—हुआ; बलिः—बलि।

अनुह्लाद की पत्नी सूर्या थी। उसने बाष्कल तथा महिष नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। प्रह्लाद के विरोचन नामक एक पुत्र हुआ जिसकी पत्नी से बलि महाराज ने जन्म लिया।

बाणज्येष्ठं पुत्रशतमशनायां ततोऽभवत् ।
तस्यानुभावं सुश्लोक्यं पश्चादेवाभिधास्यते ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

बाण-ज्येष्ठम्—सबसे बड़ा बाण; पुत्र-शतम्—एक सौ पुत्र; अशनायाम्—अशना से; ततः—उससे; अभवत्—हुए; तस्य—उसके; अनुभावम्—चरित्र, महिमा; सु-श्लोक्यम्—प्रशंसनीय; पश्चात्—बाद में; एव—निश्चय ही; अभिधास्यते—वर्णन किया जायेगा।

इसके पश्चात् अशना की कोख से महाराज बलि को एक सौ पुत्र प्राप्त हुए जिनमें राजा बाण ज्येष्ठ था। बलि महाराज का चरित्र (महिमा) अत्यन्त प्रशंसनीय है और उनका वर्णन आगे (आठवें स्कंध में) होगा।

बाण आराध्य गिरिशं लेभे तद्गणमुख्यताम् ।

यत्पार्श्वे भगवानास्ते ह्यद्यापि पुरपालकः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

बाणः—बाण ने; आराध्य—पूजा करके; गिरिशम्—शिवजी की; लेभे—प्राप्त किया; तत्—उसका (भगवान् शिव); गण-मुख्यताम्—प्रमुख पार्षदों में से एक का पद; यत्-पार्श्वे—जिसके निकट; भगवान्—भगवान् शिव; आस्ते—रहता है; हि—जिसके कारण; अद्य—अब; अपि—भी; पुर-पालकः—राजधानी का रक्षक।

चूँकि राजा बाण शिवजी का उपासक था, अतः वह उनके सर्वश्रेष्ठ पार्षदों (गणों) में से एक बन गया। आज भी शिवजी राजा बाण की राजधानी की रक्षा करते हैं और सदैव उसके निकट खड़े रहते हैं।

मरुतश्च दितेः पुत्राश्चत्वारिंशन्नवाधिकाः ।
त आसन्नप्रजाः सर्वे नीता इन्द्रेण सात्मताम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

मरुतः—मरुत गण; च—तथा; दितेः—दिति के; पुत्राः—पुत्र; चत्वारिंशत्—चालीस; नव-अधिकाः—तथा नौ; ते—वे; आसन्—थे; अप्रजाः—निःसन्तान; सर्वे—सभी; नीताः—लाये गये; इन्द्रेण—इन्द्र के द्वारा; स-आत्मताम्—देवताओं के पद को।

दिति के गर्भ से उनचास मरुतदेव भी उत्पन्न हुए। इनमें से किसी के सन्तान नहीं हुई। यद्यपि दिति ने उन्हें जन्मा था किन्तु इन्द्र ने उन्हें देव-पद प्रदान किया।

तात्पर्य : असुर भी देवता बना दिये जाते हैं जब उनका असुर-मूलक चरित्र सुघर जाता है। इस विश्व में दो प्रकार के मनुष्य हैं। भगवान् विष्णु के भक्त देवता कहलाते हैं और उनके विरोधी असुर कहलाते हैं। इस श्लोक के अनुसार असुरों को भी देवता बनाया जा सकता है।

श्रीराजोवाच

कथं त आसुरं भावमपोह्यौत्पत्तिकं गुरो ।
इन्द्रेण प्रापिताः सात्म्यं किं तत्साधु कृतं हि तैः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा परीक्षित ने कहा; कथम्—क्योंकर; ते—वे; आसुरम्—आसुरी; भावम्—वृत्ति; अपोह्य—त्यागकर; औत्पत्तिकम्—जन्म के कारण; गुरो—हे प्रभो; इन्द्रेण—इन्द्र के द्वारा; प्रापिताः—बदले गए; स-आत्म्यम्—देवताओं को; किम्—क्या; तत्—अतः; साधु—पुण्यकर्म; कृतम्—सम्पन्न किये गये; हि—निस्सन्देह; तैः—उनके द्वारा।

राजा परीक्षित ने पूछा—हे प्रभो! जन्म के कारण वे उनचासों मरुत आसुरी वृत्ति से

परिपूर्ण रहे होंगे तो फिर स्वर्ग के राजा इन्द्र ने उन्हें देवता क्यों बनाया? क्या उन्होंने कोई पुण्यकर्म या अनुष्ठान किए थे?

इमे श्रद्दधते ब्रह्मन्नृषयो हि मया सह ।
परिज्ञानाय भगवंस्तन्नो व्याख्यातुमर्हसि ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

इमे—ये; श्रद्दधते—उत्सुक हैं; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; ऋषयः—साधुजन; हि—निस्सन्देह; मया सह—मेरे साथ; परिज्ञानाय—जानने के लिए; भगवन्—हे महात्मन्; तत्—अतः; नः—हमको; व्याख्यातुम् अर्हसि—कृपा करके बताएँ।

हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! मैं तथा यहाँ पर उपस्थित सभी साधुजन इसे जानने के लिए परम उत्सुक हैं। अतः हे महात्मन्! हमसे इसका कारण बताएँ।

श्रीसूत उवाच
तद्विष्णुरातस्य स बादरायणि-
र्वचो निशम्याद्दतमल्पमर्थवत् ।
सभाजयन्सन्निभृतेन चेतसा
जगाद सत्रायण सर्वदर्शनः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

श्री-सूतः उवाच—श्री सूत गोस्वामी ने कहा; तत्—वे; विष्णुरातस्य—महाराज परीक्षित का; सः—उस; बादरायणिः—शुकदेव गोस्वामी ने; वचः—शब्द; निशम्य—सुनकर; आद्दतम्—आदरपूर्ण; अल्पम्—संक्षिप्त; अर्थ-वत्—सप्रयोजन; सभाजयन् सन्—प्रशंसा करते हुए; निभृतेन चेतसा—अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक; जगाद—उत्तर दिया; सत्रायण—हे शौनक; सर्व-दर्शनः—सर्वज्ञाता, सर्वदर्शी।

श्री सूत गोस्वामी ने कहा—हे महर्षि शौनक! महाराजा परीक्षित को सविनय एवं संक्षेप में आवश्यक विषयों पर बोलते हुए सुनकर सर्वज्ञाता शुकदेव गोस्वामी ने उनके प्रयत्नों की प्रशंसा की और इस प्रकार उत्तर दिया।

तात्पर्य : शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित के प्रश्न की अत्यधिक सराहना की क्योंकि वह संक्षेप में होते हुए भी सारगर्भित जिज्ञासाओं से पूर्ण था। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर इस बात पर बल देते हैं कि यद्यपि दिति ईर्ष्या से पूर्ण थी, किन्तु उसका हृदय भक्तिमय मनोवृत्ति के कारण शुद्ध हो चुका था। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यद्यपि कश्यप मुनि परम विद्वान थे और

आत्मचेतना में सिद्ध थे, किन्तु तो भी वे सुन्दर पत्नी की उत्प्रेरण के वश में थे। चूँकि इन समस्त प्रश्नों को महाराज परीक्षित ने अत्यन्त संक्षेप में पूछा इसलिए शुकदेव गोस्वामी अति प्रसन्न हुए।

श्रीशुक उवाच
हतपुत्रा दितिः शक्रपार्ष्णिग्राहेण विष्णुना ।
मन्युना शोकदीप्तेन ज्वलन्ती पर्यचिन्तयत् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; हत-पुत्रा—जिसके पुत्रों का वध किया जा चुका था; दितिः—दिति ने; शक्र-पार्ष्णि-ग्राहेण—जो इन्द्र की सहायता कर रहा था; विष्णुना—भगवान् विष्णु के द्वारा; मन्युना—क्रोधपूर्वक; शोक-दीप्तेन—शोक से उद्दीप्त; ज्वलन्ती—जलते हुए; पर्यचिन्तयत्—सोचा।

श्री शुकदेव गोस्वामी बोले—इन्द्र की सहायता करने मात्र के लिए भगवान् विष्णु ने हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष नामक दोनों भाइयों का वध कर दिया। उनके मारे जाने से उनकी माता दिति शोक तथा क्रोध से परिपूर्ण होकर इस प्रकार सोचने लगी।

कदा नु भ्रातृहन्तारमिन्द्रियाराममुल्बणम् ।
अक्लिन्नहृदयं पापं घातयित्वा शये सुखम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

कदा—कब; नु—निस्सन्देह; भ्रातृ-हन्तारम्—बन्धुओं को मारने वाला; इन्द्रिय-आरामम्—इन्द्रियतृप्ति का अत्यधिक इच्छुक; उल्बणम्—क्रूर; अक्लिन्न-हृदयम्—कठोर हृदय; पापम्—पापी; घातयित्वा—मरवाकर; शये—दम लूँगी; सुखम्—सुखपूर्वक।

अत्यन्त इन्द्रियलोलुप भगवान् इन्द्र ने हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष इन दोनों भाइयों का वध भगवान् विष्णु के माध्यम से किया है। अतः वह क्रूर, कठोर हृदय एवं पापी है। मैं कब उसे मारकर शान्तचित्त होकर दम ले सकूँगी?

कृमिविड्भस्मसंज्ञासीद्यस्येशाभिहितस्य च ।
भूतध्रुक्तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

कृमि—कीड़े; विट्—विष्ठा, मल; भस्म—राख; संज्ञा—नाम; आसीत्—होता है; यस्य—जिस (शरीर) का; ईश-अभिहितस्य—राजा कहलाने पर भी; च—भी; भूत-धुक्—अन्यों को पीड़ा पहुँचाने वाला; तत्-कृते—उसके लिए; स्व-अर्थम्—स्वार्थ के लिए; किम् वेद—क्या वह जानता है; निरयः—नरक में यातना; यतः—जिससे।

समस्त राजाओं तथा महान् नायकों के शरीर मृत्यु के पश्चात् कीड़ों, विष्ठा अथवा राख में परिणत हो जाएंगे। यदि कोई ऐसे शरीर की रक्षा के लिए ईर्ष्यावश अन्यों का बध करता है, तो क्या वह जीवन के वास्तविक हित को जानता है? निश्चय ही वह नहीं जानता क्योंकि अन्य जीवों के प्रति ईर्ष्या करने से वह अवश्य ही नरक को जाता है।

तात्पर्य : बड़े से बड़े राजा का शरीर भी अन्ततः विष्ठा, कीड़ों अथवा राख में परिणत हो जाता है। यदि कोई देहात्मबुद्धि के प्रति अत्यधिक आसक्त है, तो वह अवश्य ही अधिक बुद्धिमान नहीं है।

आशासानस्य तस्येदं ध्रुवमुन्नद्धचेतसः ।
मदशोषक इन्द्रस्य भूयाद्येन सुतो हि मे ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

आशासानस्य—सोचते हुए; तस्य—उसका; इदम्—यह (शरीर); ध्रुवम्—शाश्वत; उन्नद्ध-चेतसः—जिसका मन वश में नहीं है; मद-शोषकः—प्रमत्तता को दूर करने वाला; इन्द्रस्य—इन्द्र की; भूयात्—हो सकता है कि; येन—जिससे; सुतः—पुत्र; हि—निश्चय ही; मे—मेरा।

दिति ने विचार कियाः कि इन्द्र अपने शरीर को शाश्वत समझ कर अनियंत्रित हो गया है। अतः मैं ऐसा पुत्र चाहूँगी जो इन्द्र की उन्मत्तता को दूर कर दे। इसके लिए मैं कुछ न कुछ उपाय करती हूँ।

तात्पर्य : जो लोग देहात्मबुद्धि में रहते हैं शास्त्रों में उनकी तुलना गौवों और गधों जैसे पशुओं से की गयी है। दिति इन्द्र को दण्ड देना चाहती थी, जो पशु की तरह नीच बन गया था।

इति भावेन सा भर्तुराचचारासकृत्प्रियम् ।
शुश्रूषयानुरागेण प्रश्रयेण दमेन च ॥ २७॥
भक्त्या परमया राजन्मनोज्ञैर्वल्गुभाषितैः ।
मनो जग्राह भावज्ञा सस्मितापाङ्गवीक्षणैः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; भावेन—विचार से; सा—उसने; भर्तु:—पति का; आचचार—सम्पन्न किया; असकृत्—निरन्तर; प्रियम्—प्रिय कार्य; शुश्रूषया—सेवा से; अनुरागेण—प्रेम से; प्रश्रयेण—विनम्रता से; दमेन—आत्म-संयम से; च—भी; भक्त्या—भक्ति से; परमया—महान्; राजन्—हे राजन्; मनोज्ञै:—मनोहर; वल्गु-भाषितै:—मीठे वचनों से; मन:—उसका मन; जग्राह—अपने वश में कर लिया; भाव-ज्ञा—उसकी प्रकृति को जानने वाली; स-स्मित—मुस्कान से पूर्ण; अपाङ्ग-वीक्षणै:—तिरछी चितवन से।

इस प्रकार सोचती हुई (इन्द्र को मारने के लिए एक ऐसे पुत्र की इच्छा से) दिति निरन्तर अपने पति कश्यप को अपने मोहक आचरण से प्रसन्न रखने लगी। हे राजन्! दिति कश्यप की सभी आज्ञाओं का अत्यन्त निष्ठा से पालन करती रही। वह सेवा, प्रेम, विनय तथा आत्म-संयम एवं अपनी मृदुल वाणी से और अपनी मन्द हँसी और बाँकी चितवन से कश्यप के मन को आकृष्ट करते हुए उसने उन्हें अपने वश में कर लिया।

तात्पर्य : जब कोई स्त्री अपने पति की परम प्रिय बनना चाहे और उसे अत्यन्त निष्ठावान् आज्ञाकारी बनाना चाहे तो उसको सब प्रकार से प्रसन्न करने का उसे यत्न करना चाहिए। जब पति अपनी पत्नी से प्रसन्न होता है, तो पत्नी उससे सभी आवश्यक वस्तुएँ, आभूषण तथा पूर्ण इन्द्रिय-सुख प्राप्त कर सकती है। यहाँ पर दिति के आचरण से यही सूचित होता है।

एवं स्त्रिया जडीभूतो विद्वानपि मनोज्ञया ।
बाढमित्याह विवशो न तच्चित्रं हि योषिति ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार से; स्त्रिया—स्त्री द्वारा; जडीभूत:—मंत्रमुग्ध; विद्वान्—विद्वान; अपि—भी; मनोज्ञया—अत्यन्त दक्ष; बाढम्—तथास्तु, स्वीकार है; इति—इस प्रकार; आह—कहा; विवश:—उसके वश में; न—नहीं; तत्—वह; चित्रम्—आश्चर्यजनक; हि—निस्सन्देह; योषिति—स्त्रियों के मामले में।

यद्यपि कश्यप मुनि एक विद्वान पुरुष थे, किन्तु वे दिति के बनावटी व्यवहार से मोहित हो गये जिससे वे उसके वश में आ गये। अत: उन्होंने अपनी पत्नी को विश्वास दिलाया कि वे उसकी इच्छाओं की पूर्ति करेंगे। पति द्वारा ऐसा वचन तनिक भी आश्चर्यजनक नहीं है।

विलोक्यैकान्तभूतानि भूतान्यादौ प्रजापति: ।

स्त्रियं चक्रे स्वदेहार्धं यया पुंसां मतिर्हृता ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

विलोक्य—देखकर; एकान्त-भूतानि—विरक्त; भूतानि—जीवात्माएँ; आदौ—प्रारम्भ में; प्रजापतिः—भगवान् ब्रह्मा; स्त्रियम्—स्त्री; चक्रे—उत्पन्न किया; स्व-देह—अपने शरीर से; अर्धम्—आधा; यया—जिससे; पुंसाम्—मनुष्यों का; मतिः—मन; हृता—हर लिया गया।

सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्माण्ड की जीवात्माओं के पिता ब्रह्माजी ने देखा कि समस्त जीवात्मा विरक्त हो रहे हैं। अतः उन्होंने जनसंख्या बढ़ाने के उद्देश्य से पुरुष के आधे अंग से स्त्री की रचना की क्योंकि स्त्री का आचरण मनुष्य के मन को हर लेता है।

तात्पर्य : यह समस्त ब्रह्माण्ड विषयासक्ति से मंत्रमुग्ध है। भगवान् ब्रह्मा ने इसलिए ऐसा किया है, जिससे न केवल मनुष्यों की वरन् अन्य योनियों की भी जनसंख्या में वृद्धि हो। जैसाकि ऋषभदेव ने पंचम स्कन्ध में कहा है—*पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावम् एतम्*—समस्त विश्व पुरुष तथा स्त्री के मध्य कामसक्ति से मंत्रमुग्ध है। जब स्त्री तथा पुरुष का संयोग होता है, तो यह आकर्षण-ग्रंथि और भी दृढ़ हो जाती है और मनुष्य सांसारिकता में फँसता जाता है। यही भौतिक जगत का मोह है। इसी मोह का प्रभाव कश्यप मुनि पर पड़ा, यद्यपि वे परम विद्वान तथा आध्यात्मिक ज्ञान में अग्रणी थे। मनुसंहिता (२.२१५) तथा *श्रीमद्भागवत* (९.१९.१७) में कहा गया है—

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा माविविक्तासनो भवेत्।

बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥

''मनुष्यों को चाहिए कि किसी स्त्री के साथ, यहाँ तक कि अपनी माता, बहन अथवा पुत्री के साथ भी एकान्तवास न करे क्योंकि इन्द्रियाँ इतनी बलवान् होती हैं कि ज्ञानी से ज्ञानी पुरुष भी पथभ्रष्ट हो सकता है।'' जब कोई मनुष्य किसी स्त्री के पास एकान्त में रहता है, तो निश्चित रूप से उसकी कामेच्छा बढ़ जाती है। अतः यहाँ पर प्रयुक्त *एकान्त-भूतानि* शब्दों से सूचित होता है कि विषय-वासना से बचने के लिए मनुष्य को चाहिए कि जहाँ तक सम्भव हो स्त्री की संगति से दूर रहे। कामेच्छा इतनी प्रबल होती है कि यदि मनुष्य एकान्त में किसी स्त्री के साथ, भले ही वह उसकी माता, बहन या पुत्री ही क्यों न हो, रहता है, तो वह कामाभिभूत हो उठता है।

एवं शुश्रूषितस्तात भगवान्कश्यपः स्त्रिया ।
प्रहस्य परमप्रीतो दितिमाहाभिनन्द्य च ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; शुश्रूषितः—सेवा किये जाने पर; तात—हे प्रिय; भगवान्—परम शक्तिमान; कश्यपः—कश्यप मुनि ने; स्त्रिया—स्त्री के द्वारा; प्रहस्य—हँसकर; परम-प्रीतः—अत्यन्त प्रसन्न होकर; दितिम्—दिति से; आह—कहा; अभिनन्द्य—स्वीकृति देते हुए; च—भी।

हे प्रिय! अपनी पत्नी दिति के विनम्र आचरण से अत्यधिक प्रसन्न होकर परम शक्तिशाली साधु पुरुष कश्यप हँस पड़े और इस प्रकार बोले।

श्रीकश्यप उवाच
वरं वरय वामोरु प्रीतस्तेऽहमनिन्दिते ।
स्त्रिया भर्तरि सुप्रीते कः काम इह चागमः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

श्री-कश्यपः उवाच—कश्यप मुनि ने कहा; वरम्—वर, आशीर्वाद; वरय—माँगो; वामोरु—हे सुन्दरी; प्रीतः—प्रसन्न; ते—तुमसे; अहम्—मैं; अनिन्दिते—हे अनिन्द्य स्त्री; स्त्रियाः—स्त्री के लिए; भर्तरि—जब उसका पति; सु-प्रीते—प्रसन्न हो; कः—क्या; कामः—इच्छा; इह—यहाँ; च—तथा; अगमः—प्राप्त करना कठिन।

कश्यप मुनि ने कहा—हे अनिन्द्य सुन्दरी! मैं तुम्हारे आचरण से परम प्रसन्न हूँ, अतः तुम चाहे जो भी वर माँग सकती हो। यदि पति प्रसन्न हो तो चाहे इस लोक की या अन्य लोक की वह कौन सी इच्छा है, जो पूरी न हो सके?

पतिरेव हि नारीणां दैवतं परमं स्मृतम् ।
मानसः सर्वभूतानां वासुदेवः श्रियः पतिः ॥ ३३ ॥
स एव देवतालिङ्गैर्नामरूपविकल्पितैः ।
इज्यते भगवान्पुम्भिः स्त्रीभिश्च पतिरूपधृक् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

पतिः—पति; एव—निस्सन्देह; हि—निश्चय ही; नारीणाम्—स्त्रियों की; दैवतम्—देवता; परमम्—परम, सर्वश्रेष्ठ; स्मृतम्—माना जाता है; मानसः—हृदय में स्थित; सर्व-भूतानाम्—समस्त जीवात्माओं के; वासुदेवः—वासुदेव; श्रियः—सौभाग्य की देवी का; पतिः—पति; सः—वह; एव—निश्चय ही; देवता-लिङ्गैः—देवताओं के स्वरूपों से; नाम—नाम; रूप—स्वरूप; विकल्पितैः—कल्पित; इज्यते—पूजा जाता है; भगवान्—श्रीभगवान्; पुम्भिः—मनुष्यों के द्वारा; स्त्रीभिः—स्त्रियों के द्वारा; च—भी; पति-रूप-धृक्—पति के रूप में।

पति ही स्त्रियों के लिए परम देवता होता है। लक्ष्मीपति भगवान् वासुदेव सबों के हृदय में स्थित हैं और सकाम भक्तों द्वारा विभिन्न नामों तथा देव-रूपों में पूजे जाते हैं। इसी प्रकार पति भगवान् के रूप में पत्नी के लिए पूजा की वस्तु है।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (९.२३) में श्रीकृष्ण का कथन है—

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विता: ।

तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥

''हे अर्जुन! अन्य देवताओं की यज्ञ द्वारा जो भी उपासना की जाती है, वह वास्तव में मेरे ही लिए होती है किन्तु यह बिना वास्तविक समझ-बूझ के की जाती है।'' देवतागण तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सहायकों की तरह हैं, जो उनके हाथ-पाँव की भाँति कार्य करते हैं। जो श्रीभगवान् के वास्तविक सम्पर्क में नहीं है और न उनकी वास्तविक स्थिति को समझ सकता है उसे कभी-कभी यह सलाह दी जाती है कि देवताओं की पूजा करे क्योंकि वे भगवान् के अंगस्वरूप हैं। यदि स्त्रियाँ, जो साधारणतया अपने पतियों के प्रति अत्यधिक आसक्त होती हैं अपने पतियों को वासुदेव के प्रतिनिधियों के रूप में पूजें तो उन्हें उसी प्रकार लाभ मिल सकता है, जिस प्रकार अजामिल को अपने पुत्र नारायण का नाम लेने से। यद्यपि अजामिल को अपने पुत्र से प्यार था, किन्तु नारायण नाम के प्रति उसकी आसक्ति होने से और उस नाम का बारम्बार जप करने से ही उसे मुक्ति मिल सकी। भारत में आज भी पति को पति-गुरु कहा जाता है। यदि पति तथा पत्नी कृष्णभक्ति को बढ़ाने के लिए एक दूसरे पर आसक्त रहें तो इस प्रगति के लिए उनका यह सहयोग अत्यन्त लाभप्रद होगा। यद्यपि वैदिक मंत्रों में कभी-कभी इन्द्र तथा अग्नि के नामों का उच्चारण किया जाता है (*इन्द्राय स्वाहा, अग्नये स्वाहा*) किन्तु वैदिक यज्ञ वास्तव में भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने के लिए ही किए जाते हैं। जब तक कोई भौतिक इन्द्रिय-तृप्ति के प्रति अधिक आसक्त रहता है तब तक उसे देवताओं या अपने पति की पूजा करनी चाहिए।

तस्मात्पतिव्रता नार्यः श्रेयस्कामाः सुमध्यमे ।
यजन्तेऽनन्यभावेन पतिमात्मानमीश्वरम् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—अतः; पति-व्रताः—पति-परायणः; नार्यः—स्त्रियाँ; श्रेयः-कामाः—कल्याण चाहने वाले; सु-मध्यमे—हे तन्वंगी; यजन्ते—पूजा करते हैं; अनन्य-भावेन—भक्तिपूर्वक; पतिम्—पति को; आत्मानम्—परमात्मा; ईश्वरम्—श्रीभगवान् के प्रतिनिधि को।

हे सुन्दर शरीर वाली, तन्वंगी प्रिये! कर्तव्यनिष्ठा पत्नी को सदाचारिणी और अपने पति की आज्ञाकारिणी होना चाहिए। उसे अपने पति की पूजा वासुदेव के प्रतिनिधि के रूप में भक्तिपूर्वक करनी चाहिए।

सोऽहं त्वयार्चितो भद्रे ईदृग्भावेन भक्तितः ।
तं ते सम्पादये काममसतीनां सुदुर्लभम् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

सः—ऐसा व्यक्ति; अहम्—मैं; त्वया—तुम्हारे द्वारा; अर्चितः—पूजित; भद्रे—हे कल्याणी; ईदृक्-भावेन—इस प्रकार से; भक्तितः—भक्तिपूर्वक; तम्—उस; ते—तुम्हारी; सम्पादये—पूरी करूँगा; कामम्—इच्छा को; असतीनाम्—असतियों के लिए; सु-दुर्लभम्—अप्राप्य।

हे कल्याणी! तुमने मुझे श्रीभगवान् का प्रतिनिधि मानकर अत्यन्त भक्तिपूर्वक मेरी पूजा की है, अतः मैं तुम्हारी इच्छाओं को पूरा करके तुम्हें पुरस्कृत करूँगा, जो किसी अ-सती पत्नी के लिए दुर्लभ है।

दितिरुवाच
वरदो यदि मे ब्रह्मन्पुत्रमिन्द्रहणं वृणे ।
अमृत्युं मृतपुत्राहं येन मे घातितौ सुतौ ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

दितिः उवाच—दिति ने कहा; वर-दः—वरदान देने वाला; यदि—यदि; मे—मुझको; ब्रह्मन्—हे परम आत्मन्; पुत्रम्—पुत्र की; इन्द्र-हणम्—इन्द्र का वध करने वाला; वृणे—याचना करती हूँ; अमृत्युम्—अमर; मृत-पुत्रा—जिसके पुत्र मर चुके हैं; अहम्—मैं; येन—जिसके द्वारा; मे—मेरे; घातितौ—मारे गये; सुतौ—दो पुत्र।

दिति ने उत्तर दिया—हे पतिदेव! हे महात्मन्! मैं अपने दो पुत्र खो चुकी हूँ। यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं, तो मैं ऐसा अमर पुत्र चाहूँगी जो इन्द्र का वध कर सके। मैं इसलिए यह प्रार्थना कर रही हूँ क्योंकि इन्द्र ने विष्णु की सहायता से मेरे दो पुत्रों, हिरण्याक्ष तथा

हिरण्यकशिपु, का वध किया है।

तात्पर्य : *इन्द्र-हणम्* शब्द का अर्थ है, ''इन्द्र को मारने में समर्थ,'' किन्तु इसका एक दूसरा अर्थ, ''जो इन्द्र का अनुगमन करे,'' भी होता है। *अमृत्युम्* शब्द से देवताओं का बोध होता है, जो दीर्घजीवी होने के कारण सामान्य मनुष्यों की भाँति नहीं मरते। उदाहरणार्थ, भगवान् ब्रह्मा की आयु *भगवद्गीता* में इस प्रकार बताई गई है—*सहस्रयुगपर्यन्तम् अहर्यद् ब्रह्मणो विदुः*। ब्रह्मा का एक दिन अर्थात् १२ घंटे का समय ४३,००,००० गुणित १,००० वर्ष होता है। इस प्रकार उसका जीवनकाल सामान्य मनुष्य की कल्पना से परे है। इसलिए देवताओं को कभी-कभी अमर अर्थात् न मरने वाला कहा जाता है। किन्तु इस भौतिक जगत में सबको मरना है। अतः *अमृत्युम्* शब्द बताता है कि दिति ऐसा पुत्र चाहती थी जो देव-तुल्य हो।

निशम्य तद्वचो विप्रो विमनाः पर्यतप्यत ।
अहो अधर्मः सुमहानद्य मे समुपस्थितः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

निशम्य—सुनकर; तत्-वचः—उसके शब्द; विप्रः—ब्राह्मण; विमनाः—खिन्न; पर्यतप्यत—पछताने लगा; अहो—ओह; अधर्मः—अधर्म; सु-महान्—अत्यन्त महान्; अद्य—आज; मे—मुझ पर; समुपस्थितः—आ गया है।

दिति की प्रार्थना सुनकर कश्यप मुनि अत्यधिक उद्विग्न हो गये। वे पश्चाताप करने लगे, ''हाय, अब मेरे समक्ष इन्द्र को वध करने के अपवित्र कार्य का संकट आया है।

तात्पर्य : यद्यपि कश्यप मुनि अपनी पत्नी दिति की इच्छा को पूर्ण करने के लिए उत्सुक थे, किन्तु जब उन्होंने सुना कि वह इन्द्र का वध करने वाला पुत्र चाहती है, तो उनकी प्रसन्नता छूमन्तर हो गई क्योंकि वे इस विचार के विरोधी थे।

अहो अर्थेन्द्रियारामो योषिन्मय्येह मायया ।
गृहीतचेताः कृपणः पतिष्ये नरके ध्रुवम् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

अहो—ओह; अर्थ-इन्द्रिय-आरामः—भौतिक सुख में अत्यधिक लिप्त; योषित्-मय्या—स्त्री के रूप में; इह—यहाँ; मायया—माया के द्वारा; गृहीत-चेताः—मेरा मोहित मन; कृपणः—कंजूस, निष्ठुर; पतिष्ये—मैं जा गिरूँगा; नरके—नरक में; ध्रुवम्—निश्चय ही।

कश्यप मुनि ने सोचा, ओह! मैं अब भौतिक सुख के प्रति अत्यधिक आसक्त हो चुका हूँ। अतः इस अवसर का लाभ उठाकर मेरा मन श्रीभगवान् की माया द्वारा स्त्री (अपनी पत्नी) के रूप में आकृष्ट हुआ है। अतः मैं अत्यन्त नीच हूँ और अवश्य ही नरक में जा गिरूँगा।

कोऽतिक्रमोऽनुवर्तन्त्याः स्वभावमिह योषितः ।
धिङ्मां बताबुधं स्वार्थे यदहं त्वजितेन्द्रियः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

कः—क्या; अतिक्रमः—पाप (दोष); अनुवर्तन्त्याः—अनुसरण करते हुए; स्व-भावम्—उसकी प्रकृति; इह—यहाँ; योषितः—स्त्री का; धिक्—धिक्कार है; माम्—मुझको; बत—हाय, ओह; अबुधम्—अपरिचित; स्व-अर्थे—अपने लाभ के हेतु; यत्—क्योंकि; अहम्—मैं; तु—निस्सन्देह; अजित-इन्द्रियः—अपनी इन्द्रियों को वश में करने में अशक्त।

मेरी इस पत्नी ने उस साधन का सहारा लिया है, जो उसकी प्रकृति का अनुगामी है, अतः उसको दोष नहीं दिया जा सकता। किन्तु मैं तो पुरुष हूं। सारा दोष तो मेरा है क्योंकि मैं तनिक भी जान न पाया कि मेरी भलाई किसमें है क्योंकि मैं अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं रख सका।

तात्पर्य : स्त्री का जन्मजात स्वभाव संसार का उपभोग करना है। वह अपने पति को जिह्वा, उदर तथा उपस्थ की तुष्टि द्वारा इस संसार का सुख भोगने के लिए प्रवृत्त करती है। स्त्री पाकशास्त्र में निपुण होने के कारण अपने पति को सुस्वादु भोजन के द्वारा आसानी से प्रसन्न कर सकती है। जब कोई अच्छा-भोजन खाता है, तो उसका पेट भरता है और पेट भरने पर पुरुषेन्द्रियाँ प्रबल हो उठती हैं। विशेषतः जब मनुष्य मांस खाने तथा मद्य पीने जैसी तामसी वस्तुओं का आदी होता है, तो वह निश्चित रूप से विषयोन्मुख हो उठता है। यह समझ लेना चाहिए कि यह विषयोन्मुखी प्रवृत्ति नरक में गिरने का साधन है, आत्मोन्नत्ति का नहीं। इस प्रकार कश्यप मुनि ने अपनी स्थिति पर विचार किया, तो उन्हें पश्चाताप हुआ। दूसरे शब्दों में, गृहस्थ होना अत्यन्त संकटपूर्ण है जब

तक कि मनुष्य प्रशिक्षित न हो और उसकी पत्नी अपने पति की अनुगामिनी न हो। पति को जीवन के प्रारम्भ में ही इसकी शिक्षा मिलनी चाहिए। *कौमार आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह* (*भागवत* ७.६.१)। *ब्रह्मचर्य* काल में *ब्रह्मचारी* (विद्यार्थी) को *भागवत-धर्म* (भक्ति)में दक्ष होने की शिक्षा मिलनी चाहिए। अत: जब वह विवाह करे और यदि उसकी पत्नी पतिव्रता हो और वह भी भक्ति का पालन करे तो पति-पत्नी का सम्बन्ध अत्यधिक उपयुक्त रहता है। आध्यात्मिक चेतना के बिना, मात्र इन्द्रियतृप्ति के लिए पति-पत्नी का सम्बन्ध उत्तम नहीं है। *श्रीमद्भागवत* (१२.२.३) में कहा गया है कि इस कलियुग में—*दम्पत्येऽभिरुचिर्हेतु:*—पति-पत्नी का सम्बन्ध विषय-वासना पर आधारित होगा। अत: जब पति-पत्नी दोनों ही कृष्णभक्ति में तत्पर न रहें, उनके लिए गृहस्थ जीवन अत्यन्त घातक होता है।

शरत्पद्मोत्सवं वक्त्रं वचश्च श्रवणामृतम् ।
हृदयं क्षुरधाराभं स्त्रीणां को वेद चेष्टितम् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

शरत्—शरद ऋतु में; पद्म—कमल-पुष्प; उत्सवम्—फूलते हुए; वक्त्रम्—मुख; वच:—शब्द; च—भी; श्रवण—कान के लिए; अमृतम्—सुख देने वाले; हृदयम्—हृदय; क्षुर-धारा—छुरे की धार; आभम्—सदृश; स्त्रीणाम्—स्त्रियों के; क:—कौन; वेद—जानता है; चेष्टितम्—चरित्र को।

स्त्री का मुख शरदकालीन खिले हुए कमल-पुष्प के समान आकर्षक तथा सुन्दर होता है। उसके शब्द अत्यन्त मधुर और कानों को प्रिय लगने वाले होते हैं, किन्तु यदि उसके हृदय का अध्ययन किया जाये, तो पता चलेगा कि वह छुरे की धार के समान अत्यन्त पैना है। भला ऐसा कौन है, जो स्त्री के कार्यकलापों को जान सके?

तात्पर्य : कश्यप मुनि ने भौतिक दृष्टि से स्त्री का बहुत सुन्दर चित्र खींचा है। स्त्रियाँ अपनी सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध हैं और तरुणावस्था में, विशेष रूप से सोलह या सत्रह वर्ष की आयु में, वे पुरुषों के लिए अत्यधिक आकर्षक होती हैं। इसलिए स्त्री के मुख की तुलना शरद्कालीन कमल-पुष्प से की गई है। जिस प्रकार कमल का पुष्प शरद् में अत्यन्त सुन्दर लगता है उसी प्रकार

से तरुणावस्था को प्राप्त स्त्री भी अत्यन्त आकर्षक होती है। संस्कृत भाषा में स्त्री की वाणी को नारी स्वर कहते हैं क्योंकि सामान्यत: वह गाती है और उसका गायन आकर्षक होता है। आज-कल तो सिने-तारिकाओं का ही स्वागत होता है। उनमें से कुछ तो मात्र गायन के बल पर प्रभूत धन कमाती हैं। इसलिए, जैसाकि श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षा है, स्त्री का संगीत घातक है क्योंकि इससे संन्यासी उसका शिकार हो सकता है। संन्यास का अर्थ स्त्री-संग का परित्याग है, किन्तु यदि कोई संन्यासी स्त्री की वाणी सुनता है और उसके सुन्दर मुख को देखता है, तो वह निश्चित रूप से उसकी ओर आकृष्ट होता है और उसका पतन हो जाता है। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। यहाँ तक मुनि विश्वामित्र भी मेनका के शिकार हुए। अत: जो आध्यात्मिक उन्नति करना चाहता है उसे विशेष रूप से सावधान रहना चाहिए कि वह न तो स्त्री का मुख देखे और न उसकी वाणी सुने। स्त्री के मुख को देखना और उसकी सुन्दरता की प्रशंसा करना या उसकी वाणी सुनकर उसके गायन की प्रशंसा करना ब्रह्मचारी या संन्यासी का निश्चित पतन है। अत: कश्यप मुनि द्वारा स्त्री के अंगों का वर्णन अत्यन्त शिक्षाप्रद है।

यदि स्त्री के शरीर के अंग सुन्दर हैं, उसका मुख आकर्षक और वाणी मधुर है, तो वह पुरुष के लिए जाल के समान है। शास्त्रों का उपदेश है कि यदि ऐसी स्त्री पुरुष की सेवा के लिए आए तो उसे घास से ढका हुआ अन्धकूप समझना चाहिए। खेतों के बीच ऐसे अनेक कुँए होते हैं और मनुष्य उनसे परिचित न होने के कारण उनमें गिर जाते हैं। इस प्रकार ऐसे बहुत से निर्देश हैं। चूँकि संसार के सारे आकर्षण स्त्री के आकर्षण पर आधारित हैं, अत: कश्यपमुनि ने सोचा कि ऐसी स्थिति में भला स्त्री के हृदय को कौन जान सकता है? चाणाक्य पण्डित का भी उपदेश है—*विश्वासो नैव कर्तव्य: स्त्रीषु राजकुलेषु च*—"दो प्रकार के व्यक्तियों पर कभी विश्वास न करे—राजनीतिज्ञ तथा स्त्री।" ये शास्त्रों की आधिकारिक शिक्षाएँ हैं, अत: स्त्रियों के साथ उठने-बैठने में विशेष सतर्कता बरतनी चाहिए।

कभी कभी हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन की आलोचना की जाती है कि इसमें स्त्री तथा

पुरुष मिले-जुले रहते हैं। किन्तु कृष्णभक्ति तो हर एक के लिए होती है चाहे वह पुरुष हो या स्त्री। श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है—*स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्राश्तेऽपियान्ति परां गतिम्*—चाहे स्त्री हो, शूद्र या वैश्य, (ब्राह्मण तथा क्षत्रिय होने को छोड़ दें), प्रत्येक जीव भगवान् के धाम वापस जाने के लिए उपयुक्त है यदि वह अपने गुरु तथा शास्त्र के उपदेशों का कठोरता से पालन करता है। अत: हम कृष्णभावनामृत आन्दोलन के समस्त सदस्यों से, चाहे स्त्री हों या पुरुष, यह आग्रह करेंगे कि वे भौतिक शरीर के प्रति आकृष्ट न होकर केवल श्रीकृष्ण के प्रति आकृष्ट हों। तभी सब कुछ ठीक रहेगा, अन्यथा भय बना रहेगा।

न हि कश्चित्प्रिय: स्त्रीणामञ्जसा स्वाशिषात्मनाम् ।
पतिं पुत्रं भ्रातरं वा घ्नन्त्यर्थे घातयन्ति च ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; हि—निश्चय ही; कश्चित्—कोई; प्रिय:—प्रिय; स्त्रीणाम्—स्त्रियों का; अञ्जसा—वास्तव में; स्व-आशिषा—अपने स्वार्थ के लिए; आत्मनाम्—सर्वाधिक प्रिय; पतिम्—पति को; पुत्रम्—पुत्र को; भ्रातरम्—भाई को; वा—अथवा; घ्नन्ति—मार डालती हैं; अर्थे—अपने स्वार्थ के लिए; घातयन्ति—वध करवाती हैं; च—भी।

अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए स्त्रियाँ मनुष्यों के साथ ऐसा व्यवहार करती हैं मानो वे उनकी सर्वाधिक प्रिय हों, किन्तु वास्तव में उनका कोई प्रिय नहीं होता। स्त्रियों को अति साधु स्वभाव का माना जाता है, किन्तु अपने स्वार्थ के लिए वे अपने पति, पुत्र या भाई की भी हत्या कर सकती हैं या दूसरों से करा सकती हैं।

तात्पर्य : कश्यप मुनि ने स्त्रियों के स्वभाव का अच्छा अध्ययन किया है। स्वभाव से ही स्त्रियाँ स्वार्थी होती हैं, अत: सभी प्रकार से उनकी रक्षी की जानी चाहिए जिससे उनका स्वार्थी होने का यह स्वभाव प्रकट न हो। स्त्रियों को मनुष्यों द्वारा सुरक्षा की आवश्यकता होती है। बचपन में स्त्री की सुरक्षा उसके पिता द्वारा, युवावस्था में उसके पति द्वारा और वृद्धावस्था में उसके पुत्र द्वारा होनी चाहिए। यह मनु का आदेश है। उनका कथन है कि स्त्री को किसी भी अवस्था में स्वतंत्रता नहीं दी जानी चाहिए। स्त्रियों की रक्षा इसलिए की जानी चाहिए कि उनकी स्वार्थपरता

प्रकट न हो पाए। इस काल में भी ऐसी घटनाएँ हुई हैं जिनमें स्त्रियों ने जीवन बीमा का लाभ उठाने के लिए अपने पतियों की हत्याएँ की हैं। यह स्त्रियों की आलोचना नहीं, अपितु उनके स्वभाव का व्यावहारिक अध्ययन है। देहात्मबुद्धि के द्वारा ही स्त्री की या पुरुष की आलोचना की ऐसी सहज वृत्तियों का प्राकट्य होता है। जब किसी स्त्री या पुरुष की आध्यत्मिक चेतना बढ़ जाती है, तो उसकी देहात्मबुद्धि जाती रहती है। हमें समस्त स्त्रियों को आध्यात्मिक इकाइयों (*अहम् ब्रह्मास्मि*) के रूप में देखना चाहिए जिनका एकमात्र धर्म श्रीकृष्ण को तुष्ट करना है। तब हम पर इस शरीर को धारण करने से उत्पन्न होने वाले प्रकृति के गुणों का प्रभाव नहीं होगा।

कृष्णभावनामृत आन्दोलन इतना लाभप्रद है कि यह भौतिक प्रकृति के कल्मष को, जो देह धारण करने से उत्पन्न होता है, दूर कर सकता है। इसलिए प्रारम्भ में ही *भगवद्गीता* का यह उपदेश है कि चाहे स्त्री हो या पुरुष, जीव को यह समझ लेना चाहिए कि वह शरीर नहीं वरन् आत्मा है। प्रत्येक मनुष्य को शरीर नहीं वरन् आत्मा के कार्यकलापों में रुचि रखनी चाहिए। चाहे स्त्री हो या पुरुष, जब तक कोई देहात्मबुद्धि से प्रेरित रहता है तब तक सदा ही पथभ्रष्ट होने की सम्भावना बनी रहती है। आत्मा को कभी-कभी पुरुष कहा जाता है क्योंकि चाहे कोई स्त्री वेष में हो या पुरुष वेष में, वह इस भौतिक जगत का सुख उठाना चाहता है और जिसमें सुखोपभोग की यह वृत्ति होती है, वह पुरुष कहलाता है। चाहे पुरुष हो या स्त्री, वह अन्यों की सेवा करने में रुचि नहीं रखता, प्रत्येक प्राणी अपनी इन्द्रियों को ही तुष्ट करने में रुचि रखता है। किन्तु कृष्णभावनामृत या कृष्णभक्ति प्रत्येक पुरुष या स्त्री को उत्तम कोटि का प्रशिक्षण प्रदान करती है। पुरुष को उत्तमकोटि का कृष्णभक्त बनने और स्त्री को पति की निष्ठावान अनुगामिनी बनने का प्रशिक्षण मिलना चाहिए। इससे दोनों का जीवन सुखी बनेगा।

प्रतिश्रुतं ददामीति वचस्तन्न मृषा भवेत् ।
वधं नार्हति चेन्द्रोऽपि तत्रेदमुपकल्पते ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

प्रतिश्रुतम्—वचन दिया गया; ददामि—दूँगा; इति—इस प्रकार; वचः—कथन; तत्—वह; न—नहीं; मृषा—झूठा; भवेत्—हो सकता है; वधम्—हत्या; न—नहीं; अर्हति—उपयुक्त है; च—तथा; इन्द्रः—इन्द्र; अपि—भी; तत्र—उस प्रसंग में; इदम्—यह; उपकल्पते—उपयुक्त है।

मैंने उसे एक वर देने का वचन दिया है, जिसका उल्लंघन नहीं किया जा सकता, लेकिन इन्द्र वध किये जाने योग्य नहीं है। इस स्थिति में मैने जो उपाय (हल) सोचा है, वह उपयुक्त है।

तात्पर्य : कश्यप मुनि ने यह निष्कर्ष निकाला, ''दिति ऐसा पुत्र चाहती है, जो इन्द्र का वध कर सके। आखिर वह स्त्री है, अत: अधिक चतुर नहीं है। मैं उसे ऐसी शिक्षा दूँगा कि वह इन्द्र के वध के विचार को त्यागकर स्वयं वैष्णव अर्थात् कृष्ण की भक्त हो जाये। यदि वह वैष्णव नियमों को अंगीकार कर लेने के लिए राजी हो जाती है, तो उसका कुलषित हृदय निश्चय ही शुद्ध हो जाएगा—*चेतोदर्पणमार्जनम्*। भक्ति की यही विधि है। कृष्णभावनामृत में भक्ति के नियमों का पालन करके कोई भी व्यक्ति शुद्ध बनाया जा सकता है क्योंकि कृष्णभावनामृत इतना प्रबल होता है कि परम मलिन श्रेणी का व्यक्ति भी शुद्ध होकर श्रेष्ठतम् वैष्णव बन जाता है।

श्री चैतन्य महाप्रभु के आन्दोलन का यही मुख्य उद्देश्य है। नरोत्तमदास ठाकुर का कहना है—

ब्रजेन्द्रनन्दन एइ, शची-सुत हैल सेइ,

बलराम हइल निताइ

दीन-हीन यत छिल, हरि-नामे उद्धारिल,

त 'र साक्षी जगाइ-माधाइ

इस कलियुग में श्री चैतन्य महाप्रभु का प्राकट्य उन पतित आत्माओं के उद्धार के हेतु है, जो सदैव भौतिक सुख के लए कुछ न कुछ आयोजन करते रहते हैं। उन्होंने इस युग के मनुष्यों को हरे कृष्ण महामंत्र के जपने का अपूर्व अवसर प्रदान किया है, जिससे वे समस्त भौतिक कल्मष से मुक्त होकर पूर्णत: शुद्ध बन सकें। एक बार शुद्ध वैष्णव बन जाने पर कोई भी मनुष्य देहात्मबुद्धि से परे चला जाता है। इस प्रकार कश्यप मुनि ने अपनी पत्नी को वैष्णवी बनाने का प्रयत्न किया

जिससे वह इन्द्र के वध करने का विचार त्याग दे। उनकी इच्छा थी कि दिति तथा उसके पुत्र शुद्ध बनें जिससे वे वैष्णव बनने के योग्य हो सकें। निस्सन्देह, कभी-कभी अभ्यासकर्त्ता वैष्णव नियमों का पालन करते करते विचलित हो तो भी कोई हानि नहीं है। यहाँ तक कि भ्रष्ट वैष्णव को भी अच्छा फल प्राप्त होता है, जैसा कि *भगवद्गीता* में पुष्टि की गई है—*स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्*—वैष्णव नियमों के रंचमात्र पालन से भी इस संसार के बड़े से बड़े भय से छुटकारा पाया जा सकता है। इस प्रकार इन्द्र के प्राणों की रक्षा के लिए कश्यप ने अपनी पत्नी दिति को वैष्णव बनाने के लिए उपदेश देने की बात सोची।

इति सञ्चिन्त्य भगवान्मारीचः कुरुनन्दन ।
उवाच किञ्चित्कुपित आत्मानं च विगर्हयन् ॥ ४४॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; सञ्चिन्त्य—सोचकर; भगवान्—शक्तिमान; मारीचः—कश्यप मुनि; कुरु-नन्दन—हे कुरुवंशी; उवाच—बोला; किञ्चित्—कुछ-कुछ; कुपितः—क्रुद्ध; आत्मानम्—अपने आप को; च—भी; विगर्हयन्—धिक्कारते हुए।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा—इस प्रकार विचारते हुए कश्यप मुनि कुछ-कुछ क्रुद्ध हो गये। हे कुरुवंशी महाराज परीक्षित! वे अपने आपको धिक्कारते हुए दिति से इस प्रकार बोले।

श्रीकश्यप उवाच

पुत्रस्ते भविता भद्रे इन्द्रहादेवबान्धवः ।
संवत्सरं व्रतमिदं यद्यञ्जो धारयिष्यसि ॥ ४५॥

शब्दार्थ

श्री-कश्यपः उवाच—कश्यप मुनि ने कहा; पुत्रः—पुत्र; ते—तुम्हारा; भविता—होगा; भद्रे—हे कल्याणी; इन्द्र-हा—इन्द्र का वध करने वाला, अथवा इन्द्र का अनुयायी; अदेव-बान्धवः—असुरों का मित्र (अथवा देव-बान्धवः—देवताओं का मित्र); संवत्सरम्—एक वर्ष तक; व्रतम्—व्रत को; इदम्—इस; यदि—यदि; अञ्जः—उचित रीति से; धारयिष्यसि—पालन करोगी।

कश्यप मुनि ने कहा, हे कल्याणी! यदि तुम अपने इस व्रत के सम्बन्ध में मेरे उपदेशों का कम से कम एक वर्ष तक पालन करोगी तो तुम्हें निश्चित रूप से पुत्र प्राप्त होगा जो इन्द्र का वध करने में सक्षम होगा। किन्तु यदि तुम वैष्णव नियमों का पालन करने वाले इस व्रत

से तनिक भी विचलित होगी तो तुम्हें जो पुत्र प्राप्त होगा वह इन्द्र का अनुयायी होगा।

तात्पर्य : *इन्द्र-हा* शब्द से ऐसे असुर का बोध होता है, जो इन्द्र को मारने के लिए सदैव उत्सुक रहता है। स्वाभाविक है कि इन्द्र का शत्रु असुरों का मित्र होगा, किन्तु *इन्द्र-हा* शब्द से इन्द्र का अनुयायी या उसका आज्ञापालक अर्थ भी निकलता है। जब कोई इन्द्र का भक्त बनता है, तो निश्चय ही वह देवताओं का मित्र होगा। अत: *इन्द्र-हादेव-बान्धव:* शब्द समान उच्चारण वाले हैं और उनका अर्थ है ''तुम्हारा पुत्र इन्द्र को मारेगा किन्तु वह देवताओं का मित्र होगा।'' जब कोई व्यक्ति देवताओं का वास्तव में मित्र बन गया तो फिर वह इन्द्र का वध कैसे कर सकता है?

दितिरुवाच
धारयिष्ये व्रतं ब्रह्मन्ब्रूहि कार्याणि यानि मे ।
यानि चेह निषिद्धानि न व्रतं घ्नन्ति यान्युत ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

दिति: उवाच—दिति ने कहा; धारयिष्ये—अंगीकार करूँगी; व्रतम्—व्रत; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; ब्रूहि—कृपया कहें; कार्याणि—करणीय; यानि—जो सब; मे—मुझसे; यानि—जो सब; च—तथा; इह—यहाँ; निषिद्धानि—वर्जित; न—नहीं; व्रतम्—व्रत; घ्नन्ति—तोड़ते हैं; यानि—जो सब; उत—भी।

दिति ने उत्तर दिया—हे ब्राह्मण! मैं आपके परामर्श को स्वीकार करती हूँ। मैं व्रत का पालन करूँगी। अब मुझे बतावें कि मुझे क्या करना है, क्या नहीं करना है और किस प्रकार यह व्रत भंग नहीं हो सकेगा? कृपा करके यह सब स्पष्ट बताए।

तात्पर्य : जैसाकि पहले कहा जा चुका है, स्त्री सामान्यत: अपना स्वार्थ साधना चाहती है। कश्यप मुनि ने दिति की इच्छापूर्ति के लिए एक वर्ष तक शिक्षा देने का प्रस्ताव रखा और चूँकि वह इन्द्र को मारने के लिए इच्छुक थी, अत: उसने तुरन्त अंगीकर कर लिया और कहा, ''कृपया मुझसे उस व्रत को कहें और बताएँ कि उसे किस प्रकार पालना होगा। मैं वचन देती हूँ कि मैं उसको भंग नहीं करूँगी।'' स्त्री की मनोवृत्ति का यह दूसरा पक्ष है। यद्यपि स्त्री अपनी योजना पूरी करने की परम इच्छुक रहती है किन्तु जब कोई उसे शिक्षा देता है, विशेष रूप से जब पति शिक्षा देता है, तो वह निर्दोष भाव से पालन करती है। इस प्रकार उसे अच्छे उद्देश्य-प्राप्ति के लिए

शिक्षित किया जा सकता है। स्त्री स्वभाव से पुरुष की अनुगामिनी बनना चाहती है, अत: यदि पुरुष अच्छा है, तो स्त्री को सद्कार्य के लिए शिक्षित किया जा सकता है।

श्रीकश्यप उवाच
न हिंस्याद्भूतजातानि न शपेन्नानृतं वदेत् ।
न छिन्द्यान्नखरोमाणि न स्पृशेद्यदमङ्गलम् ॥ ४७॥

शब्दार्थ

श्री-कश्यप: उवाच—कश्यप मुनि ने कहा; न हिंस्यात्—हिंसा न करे; भूत-जातानि—जीवात्माओं की; न शपेत्—शाप न दे; न—नहीं; अनृतम्—झूठ; वदेत्—बोले; न छिन्द्यात्—न काटे; नख-रोमाणि—नाखून तथा रोएँ; न स्पृशेत्—स्पर्श न करे; यत्—जो; अमङ्गलम्—अशुभ।

कश्यप मुनि ने कहा, हे प्रिये! इस व्रत का पालन करते समय न तो उग्र बने, न ही किसी को कष्ट पहुँचाए। न तो किसी को शाप दे, न असत्य भाषण करे। न तो अपने नाखून तथा बाल काटे और न हड्डियों तथा खोपड़ी जैसी अशुद्ध वस्तुओं का स्पर्श करे।

तात्पर्य : कश्यप मुनि ने अपनी पत्नी को जो पहला उपदेश दिया वह था किसी से द्वेष न करना। इस संसार में सबों में द्वेष करने की सामान्य प्रवृत्ति पाई जाती है। अत: कृष्णभक्त बनने के लिए इस प्रवृत्ति पर अंकुश लगाना चाहिए जैसाकि *श्रीमद्भागवत* में कहा गया है (*परमो निर्मत्सराणाम्*)। कृष्णभक्त सदैव द्वेषरहित होता है, जबकि अन्य लोग द्वेषमय। अत: कश्यपमुनि द्वारा अपनी पत्नी को यह उपदेश देना कि वह द्वेषरहित हो, सूचित करता है कि कृष्णभक्ति को बढ़ाने की दिशा में यह पहली अवस्था है। कश्यप मुनि अपनी पत्नी को कृष्णभक्त बनाना चाहते थे जिससे उसकी तथा इन्द्र दोनों की रक्षा हो सके।

नाप्सु स्नायान्न कुप्येत न सम्भाषेत दुर्जनै: ।
न वसीताधौतवास: स्त्रजं च विधृतां क्वचित् ॥ ४८॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अप्सु—जल में; स्नायात्—नहाए; न कुप्येत—न क्रोध करे; न सम्भाषेत—न बोले; दुर्जनै:—बुरे लोगों से; न वसीत—न धारण करे; अधौत-वास:—बिना धुले कपड़े; स्त्रजम्—फूलों की माला; च—तथा; विधृताम्—पहनी हुई; क्वचित्—कभी।

कश्यप मुनि ने आगे कहा—हे कल्याणी! नहाते समय पानी में कभी न घुसे, कभी क्रोध न करे और न दुष्ट लोगों से कभी बोले या संगति करे। कभी भी बिना धुले वस्त्र न पहने और पहले धारण की गई माला को कभी न पहने।

नोच्छिष्टं चण्डिकान्नं च सामिषं वृषलाहृतम् ।
भुञ्जीतोदक्यया दृष्टं पिबेन्नाञ्जलिना त्वपः ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; उच्छिष्टम्—जूठा भोजन; चण्डिका-अन्नम्—देवी काली को चढ़ाया गया भोजन; च—तथा; स-आमिषम्—मांस से युक्त; वृषल-आहृतम्—शूद्र द्वारा लाया हुआ; भुञ्जीत—खाए; उदक्यया—रजस्वला स्त्री द्वारा; दृष्टम्—देखा गया; पिबेत् न—नहीं पिये; अञ्जलिना—दोनों हाथों की अँजुली द्वारा; तु—भी; अपः—जल।

कभी भी जूठा भोजन न खायें, देवी काली (दुर्गा) को चढ़ाया हुआ प्रसाद न खायें और मांस या मछली से मिश्रित कोई भी वस्तु न खायें। शूद्र द्वारा लाई गई या शूद्र द्वारा स्पर्श की गई अथवा रजस्वला स्त्री द्वारा देखी गई किसी भी सामग्री को न खायें। अंजली से पानी न पियें।

तात्पर्य : सामान्यत: देवी काली पर मांस तथा मछली से युक्त भोजन चढ़ाया जाता है, अत: कश्यप मुनि ने अपनी पत्नी को ऐसे जूठे प्रसाद को ग्रहण करने के लिए मना किया है। वास्तव में वैष्णवों को देवताओं पर चढ़ी हुई किसी भी भोज्य सामग्री को ग्रहण करने की अनुमति नहीं है। उन्हें तो भगवान् विष्णु पर चढ़ाये गये प्रसाद को ही ग्रहण करना चाहिए। इन उपदेशों के द्वारा निषेध विधि से कश्यपमुनि अपनी पत्नी को वैष्णवी बनाना चाह रहे थे।

नोच्छिष्टास्पृष्टसलिला सन्ध्यायां मुक्तमूर्धजा ।
अनर्चितासंयतवाक्नासंवीता बहिश्चरेत् ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; उच्छिष्टा—जूठा; अस्पृष्ट-सलिला—बिना धोये; सन्ध्यायाम्—सायंकाल; मुक्त-मूर्धजा—बाल खोले हुए; अनर्चिता—आभूषण रहित; असंयत-वाक्—वाणी के संयम बिना; न—नहीं; असंवीता—बिना ओढ़े; बहिः—बाहर; चरेत्—जाए।

भोजन करने के पश्चात् तुम्हें मुँह, हाथ तथा पाँव धोये बिना बाहर सड़क पर नहीं जाना

चाहिए। तुम्हें न तो शाम को या बाल खोले हुए और न आभूषणों से सज्जित हुए बिना बाहर जाना चाहिए। जब तक वाणी का संयम न हो और शरीर ठीक से ढका न हो तब तक तुम्हें घर से बाहर नहीं जाना चाहिए।

तात्पर्य : कश्यप मुनि ने अपनी पत्नी को सलाह दी कि जब तक ठीक से अलंकृत और वस्त्राभूषित न होए, बाहर न निकले। उन्होंने आजकल की भाँति चारों ओर प्रचलित मिनीस्कर्ट पहन कर बाहर निकलने की अनुमति नहीं दी। प्राच्य सभ्यता के अनुसार जब कोई स्त्री बाहर निकलती है, तो वह अपने शरीर को ठीक से ढके रहती है, जिससे कोई उसे पहचान न सके। इन सब विधियों को शुद्धि के लिए स्वीकार करना चाहिए। यदि कोई कृष्णभक्ति करता है, तो वह पूर्णत: शुद्ध हो जाता है और इस संसार के कल्मष से बचा रहता है।

नाधौतपादाप्रयता नार्द्रपादा उदक्शिराः ।
शयीत नापराङ्नान्यैर्न नग्ना न च सन्ध्ययोः ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अधौत-पादा—बिना धुले पाँव; अप्रयता—बिना शुद्ध हुए; न—नहीं; अर्द्र-पादा—भीगे पाँव; उदक्-शिरा:—उत्तर की ओर सिर करके; शयीत—सोए; न—नहीं; अपराक्—पश्चिम की ओर सिर करके; न—नहीं; अन्यै:—अन्य स्त्रियों के साथ; न—नहीं; नग्ना—निर्वस्त्र होकर; न—नहीं; च—तथा; सन्ध्ययो:—सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय।

तुम्हें न तो दोनों पाँव धोये बिना या शुद्ध हुए बिना, न ही गीले पाँव अथवा अपना सिर पश्चिम या उतर करके सोना चाहिए। सूर्योदय अथवा सूर्यास्त के समय, निर्वस्त्र होकर तथा अन्य स्त्रियों के साथ नहीं लेटना चाहिए।

धौतवासा शुचिर्नित्यं सर्वमङ्गलसंयुता ।
पूजयेत्प्रातराशात्प्राग्गोविप्राञ्श्रियमच्युतम् ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

धौत-वासा—धुले वस्त्र पहन कर; शुचि:—शुद्ध होकर; नित्यम्—सदैव; सर्व-मङ्गल—समस्त शुभ सामग्रियों सहित; संयुता—सज्जित होकर; पूजयेत्—पूजा करनी चाहिए; प्रात:-आशात् प्राक्—कलेवा के पूर्व; गो-विप्रान्—गायों तथा ब्राह्मणों; श्रियम्—सम्पत्ति की देवी; अच्युतम्—श्रीभगवान् को।

मनुष्य को चाहिए कि धुला वस्त्र पहन कर, सदैव शुद्ध रहकर तथा हल्दी, चंदन और

अन्य मांगलिक सामग्रियों से अलंकृत होकर कलेवा करने के पूर्व गायों, ब्राह्मणों, ऐश्वर्य की देवी (लक्ष्मी) तथा श्रीभगवान् की पूजा करे।

तात्पर्य : यदि किसी को गायों तथा ब्राह्मणों का सत्कार करने तथा पूजा करने की शिक्षा दे दी जाये तो वह वास्तव में सभ्य बन जाता है। परमेश्वर की पूजा की संस्तुति की जाती है और भगवान् को गाएँ तथा ब्राह्मण अत्यंन्त प्रिय हैं (*नमो ब्रह्मण्य-देवाय गो-ब्राह्मणहिताय च*)। दूसरे शब्दों में, यह कह सकते हैं, जिस सभ्यता में गायों तथा ब्राह्मणों का आदर नहीं होता उसे धिक्कार है। ब्राह्मणों का गुण प्राप्त किये बिना तथा गायों को सुरक्षा प्रदान किये बिना कोई आत्मसिद्ध नहीं बन सकता। गो-रक्षा से प्रचुर दुग्ध-सामग्री की निश्चिन्तता आती है और उन्नत सभ्यता के लिए यह परमावश्यक है। गो-मांस खाकर सभ्यता को दूषित नहीं करना चाहिए। जब कोई सभ्यता अग्रसर होती है तभी वह आर्य सभ्यता कहलाती है। मांस के लिए गोवध न करके सभ्य मनुष्यों को उसके दूध से अनेक वस्तुएँ बनाकर समाज की दशा सुधारनी चाहिए। यदि मनुष्य ब्राह्मण-संस्कृति का अनुसरण करे तो वह कृष्णभक्ति में दक्ष हो सकता है।

स्त्रियो वीरवतीश्चार्चेत्स्रग्गन्धबलिमण्डनैः ।
पतिं चार्च्योपतिष्ठेत ध्यायेत्कोष्ठगतं च तम् ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

स्त्रियः—स्त्रियाँ; वीर-वतीः—पति तथा पुत्रों से सम्पन्न; च—तथा; अर्चेत्—पूजन करना चाहिए; स्रक्—पुष्प मालाओं से; गन्ध—चन्दन; बलि—भेंट; मण्डनैः—तथा आभूषणों से; पतिम्—पति की; च—तथा; आर्च्य—पूजा करके; उपतिष्ठेत—स्तुति करना चाहिए; ध्यायेत्—ध्यान करनी चाहिए; कोष्ठ-गतम्—गर्भ में रहकर; च—भी; तम्—उसको।.

इस व्रत का पालन करने वाली स्त्री को चाहिए कि वह पुष्प माला, चन्दन, आभूषण तथा अन्य सामग्रियों से पुत्रवती तथा सौभाग्यवती स्त्रियों की पूजा करे। गर्भवती स्त्री को अपने पति की पूजा करके उसकी स्तुति करनी चाहिए। उसे उसका ध्यान यह सोचकर करना चाहिए कि वह उसके गर्भ में स्थित है।

तात्पर्य : गर्भस्थ शिशु पति के शरीर का अंग होता है। अत: पति अपने प्रतिनिधि के माध्यम

से अपनी गर्भवती स्त्री के गर्भ में निवास करता है।

सांवत्सरं पुंसवनं व्रतमेतदविप्लुतम् ।
धारयिष्यसि चेत्तुभ्यं शक्रहा भविता सुतः ॥ ५४॥

शब्दार्थ

सांवत्सरम्—एक वर्ष तक; पुंसवनम्—पुंसवन नामक; व्रतम्—व्रत; एतत्—यह; अविप्लुतम्—तोड़े बिना, अतिक्रमण किये बिना; धारयिष्यसि—करोगी; चेत्—यदि; तुभ्यम्—तुम्हारे; शक्र-हा—इन्द्र का वधकर्ता; भविता—होगा; सुतः—पुत्र।

कश्यप मुनि ने आगे कहा—यदि तुम श्रद्धापूर्वक कम से कम एक वर्ष तक इस व्रत में लगी रहकर इस पुंसवन अनुष्ठान को करोगी तो तुम्हारे एक पुत्र उत्पन्न होगा जो इन्द्र का वध करेगा। किन्तु यदि इस व्रत को करने में कुछ भी त्रुटि रह गई तो तुम्हारा पुत्र इन्द्र का मित्र बन जाएगा।

बाढमित्यभ्युपेत्याथ दिती राजन्महामनाः ।
कश्यपाद्गर्भमाधत्त व्रतं चाञ्जो दधार सा ॥ ५५॥

शब्दार्थ

बाढम्—तथास्तु; इति—इस प्रकार; अभ्युपेत्य—स्वीकार करके; अथ—तब; दितिः—दिति ने; राजन्—हे राजा; महा-मनाः—हर्षित; कश्यपात्—कश्यप से; गर्भम्—वीर्य; आधत्त—प्राप्त करके; व्रतम्—व्रत; च—तथा; अञ्जः—ठीक से; दधार—पालन किया; सा—उसने।

हे राजा परीक्षित! कश्यप की पत्नी दिति ने पुंसवन नामक शुद्धिकर्त्री विधि को करना अंगीकार कर लिया। उसने कहा, ''हाँ, मैं आपके उपदेशानुसार सब कुछ करूँगी।'' वह अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक कश्यप का वीर्य धारण कर गर्भवती हुई और श्रद्धापूर्वक व्रत का पालन करती रही।

मातृष्वसुरभिप्रायमिन्द्र आज्ञाय मानद ।
शुश्रूषणेनाश्रमस्थां दितिं पर्यचरत्कविः ॥ ५६॥

शब्दार्थ

मातृ-स्वसुः—अपनी माता की बहन (मौसी) का; अभिप्रायम्—मन्तव्य; इन्द्रः—इन्द्र; आज्ञाय—समझकर; मान-द—सबों को सम्मान देने वाले, हे राजा परीक्षित; शुश्रूषणेन—सेवा से; आश्रम-स्थाम्—आश्रम में रहने वाली; दितिम्—दिति; पर्यचरत्—परिचर्या की गई; कविः—अपना स्वार्थ देखकर।

सबों का सम्मान करने वाले हे राजा! इन्द्र ने दिति का मन्तव्य जान लिया, अतः वह अपना स्वार्थ साधने की युक्ति सोचने लगा। इस तर्क का अनुसरण करते हुए कि आत्म-रक्षा प्रकृति का प्रथम नियम है, उसने दिति की प्रतिज्ञा को भंग करना चाहा। अतः वह आश्रमवासिनी अपनी मौसी दिति की सेवा करने लगा।

नित्यं वनात्सुमनसः फलमूलसमित्कुशान् ।
पत्राङ्कुरमृदोऽपश्च काले काल उपाहरत् ॥ ५७॥

शब्दार्थ

नित्यम्—प्रतिदिन; वनात्—वन से; सुमनसः—फूल; फल—फल; मूल—जड़ें; समित्—यज्ञ के लिए समिधा (लकड़ी); कुशान्—तथा कुश; पत्र—पत्तियाँ; अङ्कुर—कलियाँ; मृदः—तथा मिट्टी; अपः—जल; च—भी; काले काले—उचित समय पर; उपाहरत्—ले आने लगा।

इन्द्र प्रतिदिन जंगल से फूल, फल, कंद तथा यज्ञ के लिए समिधा लाकर अपनी मौसी की सेवा करने लगा। वह उचित समय पर कुश, पत्तियाँ, कलियाँ, मिट्टी तथा जल भी ले आता था।

एवं तस्या व्रतस्थाया व्रतच्छिद्रं हरिर्नृप ।
प्रेप्सुः पर्यचरज्जिह्मो मृगहेव मृगाकृतिः ॥ ५८॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; तस्याः—उस (दिति) का; व्रत-स्थायाः—श्रद्धापूर्वक अपना व्रत का पालन करने वाली; व्रत-छिद्रम्—व्रत पालन करने में त्रुटि (कमी); हरिः—इन्द्र; नृप—हे राजन्; प्रेप्सुः—ढूँढने की इच्छा से; पर्यचरत्—सेवा की गई; जिह्मः—छलपूर्ण; मृग-हा—बहेलिया; इव—सदृश; मृग-आकृतिः—हिरन के रूप में।

हे राजा परीक्षित! जिस प्रकार बहेलिया हिरन को मारने के लिए हिरन की खाल पहन कर छद्मवेष धारण करता है उसी प्रकार से इन्द्र, हृदय से दिति पुत्रों का शत्रु किन्तु बाहर से मित्र बनकर अत्यन्त श्रद्धापूर्वक दिति की सेवा करने लगा। इन्द्र का मन्तव्य दिति के व्रत के अनुष्ठान में त्रुटि निकालकर उसे धोखा देना था, किन्तु साथ ही वह नहीं चाहता था कि कोई

उसे पहचान सके इसलिए वह अत्यन्त सतर्कता के साथ उसकी सेवा करने लगा।

नाध्यगच्छद्व्रतच्छिद्रं तत्परोऽथ महीपते ।
चिन्तां तीव्रां गतः शक्रः केन मे स्याच्छिवं त्विह ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अध्यगच्छत्—पा सका; व्रत-छिद्रम्—व्रत पालन में त्रुटि; तत्-परः—उसमें व्यस्त; अथ—तत्पश्चात्; मही-पते—हे विश्व के स्वामी; चिन्ताम्—चिन्ता को; तीव्राम्—तीव्र; गतः—प्राप्त; शक्रः—इन्द्र; केन—किस प्रकार; मे—मेरा; स्यात्—हो सकता है; शिवम्—शुभ; तु—तब; इह—यहाँ।

हे विश्वेश्वर! जब इन्द्र को कोई त्रुटि न मिली तो उसने सोचा, अब मेरा कल्याण कैसे हो? इस प्रकार वह गहरी चिन्ता में डूब गया।

एकदा सा तु सन्ध्यायामुच्छिष्टा व्रतकर्शिता ।
अस्पृष्टवार्यधौताङ्घ्रिः सुष्वाप विधिमोहिता ॥ ६० ॥

शब्दार्थ

एकदा—एक बार; सा—वह; तु—लेकिन; सन्ध्यायाम्—संध्या समय; उच्छिष्टा—भोजन के तुरन्त बाद; व्रत—व्रत से; कर्शिता—दुर्बल तथा अशक्त; अस्पृष्ट—बिना आचमन लिए; वारि—जल; अधौत—बिना धोये; अङ्घ्रिः—अपने पाँव; सुष्वाप—सोने के लिए गई; विधि—दैववश; मोहिता—मोहित होकर।

कठोरता से व्रत का पालन करते रहने से अत्यन्त क्षीण एवं अशक्त हो जाने से दुर्भाग्यवश दिति ने भोजन के पश्चात् मुँह, हाथ तथा पाँव धोने में लापरवाही बरती और सन्ध्या में ही सो गई।

लब्ध्वा तदन्तरं शक्रो निद्रापहृतचेतसः ।
दितेः प्रविष्ट उदरं योगेशो योगमायया ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ

लब्ध्वा—पाकर; तत्-अन्तरम्—तत्पश्चात्; शक्रः—इन्द्र; निद्रा—नींद से; अपहृत-चेतसः—अचेत; दितेः—दिति के; प्रविष्टः—घुस गया; उदरम्—गर्भ में; योग-ईशः—योग के स्वामी, योगेश्वर; योग—योग-सिद्धियों की; मायया—शक्ति से।

इस त्रुटि को पाकर समस्त योगशक्तियों (योग सिद्धियाँ यथा अणिमा, लघिमा) का स्वामी इन्द्र घोर निद्रा में अचेत दिति के गर्भ में प्रविष्ट हो गया।

तात्पर्य : परम सफल योगी को आठ सिद्धियाँ प्राप्त रहती हैं। इनमें से एक के द्वारा, जिसे अणिमा सिद्धि कहते हैं, वह परमाणु से भी लघु बन सकता है। उस अवस्था में वह कहीं भी प्रविष्ट हो सकता है। इन्द्र इसी शक्ति से गर्भिणी दिति के भीतर प्रविष्ट हो गया।

चकर्त सप्तधा गर्भं वज्रेण कनकप्रभम् ।
रुदन्तं सप्तधैकैकं मा रोदीरिति तान्पुनः ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ

चकर्त—काट दिया; सप्त-धा—सात खंडों में; गर्भम्—गर्भ को; वज्रेण—अपने वज्र से; कनक—स्वर्ण की; प्रभम्—ज्योति वाले; रुदन्तम्—रोते हुए; सप्त-धा—सात खंडों में; एक-एकम्—प्रत्येकों; मा रोदीः—मत रोओ; इति—इस प्रकार; तान्—उनको; पुनः—फिर।

दिति के गर्भ में प्रविष्ट होकर इन्द्र ने अपने वज्र से चमकते हुए सोने के समान गर्भ (भ्रूण) को सात खण्डों में काट डाला। सात स्थानों में सात विभिन्न जीव रोने लगे। इन्द्र ने ''मत रो'' ऐसा कहकर प्रत्येक को पुनः सातखण्डों में काट डाला।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर लिखते हैं कि इन्द्र ने अपनी योगशक्ति से पहले एक मरुत के शरीर को सात भागों में बढ़ा दिया और फिर मूल शरीर के सात भागों में से प्रत्येक को काटकर कुल उनचास भाग कर दिये। जब प्रत्येक शरीर के सात खण्ड किये गये तो अन्य जीवात्माएँ इन शरीरों में प्रविष्ट कर गईं। इस प्रकार वे उन वृक्षों के तुल्य बन गईं जिन्हें विभिन्न हिस्सों में काटकर पर्वत के ऊपर लगा दिया जाता है और वे पृथक् सत्ता प्राप्त कर लेते हैं। पहला शरीर एक ही था और जब उसे कई खण्डों में काटा गया तो अन्य जीवात्माएँ इन नवीन शरीरों में प्रवेश कर गईं।

तमूचुः पाट्यमानास्ते सर्वे प्राञ्जलयो नृप ।
किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसकी; ऊचुः—कहा; पाट्यमानाः—संतप्त होकर; ते—वे; सर्वे—समस्त; प्राञ्जलयः—हाथ जोड़े; नृप—हे राजा; किम्—क्यों; नः—हमको; इन्द्र—हे इन्द्र; जिघांससि—मारना चाहते हो; भ्रातरः—भाइयों को; मरुतः—मरुद्गण; तव—तुम्हारे।

अत्यन्त संतप्त होकर, हाथ जोड़कर उन्होंने इन्द्र से कहा—''हे राजन्! हे इन्द्र! हम तुम्हारे भाई मरुद्गण हैं। तुम हमें क्यों मार रहे हो?''

मा भैष्ट भ्रातरो मह्यं यूयमित्याह कौशिकः ।
अनन्यभावान्पार्षदानात्मनो मरुतां गणान् ॥ ६४॥

शब्दार्थ

मा भैष्ट—मत डरो; भ्रातरः—भाई; मह्यम्—मेरे; यूयम्—तुम सब; इति—इस प्रकार; आह—कहा; कौशिकः—इन्द्र; अनन्य-भावान्—भक्तिपूर्ण; पार्षदान्—अनुयायीगण; आत्मनः—अपने; मरुताम् गणान्—मरुद्गणों से।

जब इन्द्र ने देखा कि वे वास्तव में उसके भक्त-अनुयायी हैं, तो उसने उनसे कहा कि यदि तुम सचमुच मेरे भाई हो तो तुम्हें मुझसे डरने की कोई आवश्यकता नहीं है।

न ममार दितेर्गर्भः श्रीनिवासानुकम्पया ।
बहुधा कुलिशक्षुण्णो द्रौण्यस्त्रेण यथा भवान् ॥ ६५॥

शब्दार्थ

न—नहीं; ममार—मरा; दितेः—दिति का; गर्भः—गर्भ (भ्रूण); श्रीनिवास—लक्ष्मी के निवास स्थान, भगवान् विष्णु के; अनुकम्पया—अनुग्रह से; बहु-धा—अनेक खण्डों में; कुलिश—वज्र से; क्षुण्णः—कटा हुआ; द्रौणि—अश्वत्थामा के; अस्त्रेण—अस्त्र से; यथा—जिस प्रकार; भवान्—आप।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा, हे राजा परीक्षित! आप अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से जला दिये गये थे, किन्तु जब श्रीकृष्ण आपकी माता के गर्भ में प्रविष्ट हुए तो आप बच गए। इसी प्रकार यद्यपि इन्द्र ने एक गर्भ को वज्र द्वारा उनचास खण्डों में काट डाला था, किन्तु वे सभी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अनुग्रह से बच गये।

सकृदिष्ट्वादिपुरुषं पुरुषो याति साम्यताम् ।
संवत्सरं किञ्चिदूनं दित्या यद्धरिरर्चितः ॥ ६६॥
सजूरिन्द्रेण पञ्चाशद्देवास्ते मरुतोऽभवन् ।
व्यपोह्य मातृदोषं ते हरिणा सोमपाः कृताः ॥ ६७॥

शब्दार्थ

सकृत्—एक बार; इष्ट्वा—पूजा करके; आदि-पुरुषम्—आदि पुरुष को; पुरुषः—एक व्यक्ति; याति—जाता है; साम्यताम्—भगवान् जैसा शरीर धारण किये हुए; संवत्सरम्—एक वर्ष; किञ्चित् ऊनम्—कुछ कम; दित्या—दिति के द्वारा; यत्—क्योंकि; हरिः—भगवान् हरि; अर्चितः—पूजित; सजूः—के साथ; इन्द्रेण—इन्द्र; पञ्चाशत्—पचास; देवाः—देवता; ते—वे; मरुतः—मरुद्गण; अभवन्—हुए; व्यपोह्य—हटाकर; मातृ-दोषम्—अपनी माता का दोष; ते—वे; हरिणा—भगवान् हरि द्वारा; सोम-पाः—सोमरस पीने वाले; कृताः—बनाये गये थे।

यदि कोई पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा एक बार भी करता है, तो वह वैकुण्ठ मे प्रवेश करने का अधिकारी हो जाता है तथा भगवान् विष्णु के रूप को प्राप्त करता है। संकल्पपूर्वक कड़ाई से नियमों का पालन करते हुए दिति ने लगभग एक वर्ष तक भगवान् विष्णु की पूजा की। आध्यात्मिक जीवन की इस शक्ति के कारण उनचास मरुद्रगण पैदा हुए। यद्यपि मरुद्रगण दिति के गर्भ से पैदा हुए, किन्तु परम भगवान् की कृपा से वे देवताओं की बराबरी पर आ गये, यह कैसा आश्चर्य है?

दितिरुत्थाय ददृशे कुमाराननलप्रभान् ।
इन्द्रेण सहितान्देवी पर्यतुष्यदनिन्दिता ॥ ६८ ॥

शब्दार्थ

दितिः—दिति ने; उत्थाय—उठकर; ददृशे—देखा; कुमारान्—बालकों को; अनल-प्रभान्—अग्नि के समान तेजस्वी; इन्द्रेण सहितान्—इन्द्र के साथ; देवी—देवी; पर्यतुष्यत्—प्रसन्न थी; अनिन्दिता—शुद्ध हुई।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा करने से दिति पूर्णतया शुद्ध हो गई थी। जब वह बिस्तर से उठी तो उसने इन्द समेत अपने उनचास पुत्रों को देखा। ये उनचासों पुत्र अग्नि के समान तेजवान थे और इन्द्र के मित्र थे अतः वह अतीव प्रसन्न थी।

अथेन्द्रमाह ताताहमादित्यानां भयावहम् ।
अपत्यमिच्छन्त्यचरं व्रतमेतत्सुदुष्करम् ॥ ६९ ॥

शब्दार्थ

अथ—तदनन्तर; इन्द्रम्—इन्द्र से; आह—बोली; तात—प्यारे बेटे; अहम्—मैं; आदित्यानाम्—आदित्यों से; भय-आवहम्—भयभीत करने वाली; अपत्यम्—पुत्र; इच्छन्ती—इच्छा करती हुई; अचरम्—पालन किया; व्रतम्—व्रत; एतत्—यह; सु-दुष्करम्—जो कर पाना अत्यन्त कठिन है।

तदनन्तर, दिति ने इन्द्र से कहा—हे पुत्र! मैं इस कठोर व्रत का इसलिए पालन कर रही

थी कि तुम बारहों आदित्यों को मारने के लिए एक पुत्र प्राप्त कर सकूँ।

एकः सङ्कल्पितः पुत्रः सप्त सप्ताभवन्कथम् ।
यदि ते विदितं पुत्र सत्यं कथय मा मृषा ॥ ७० ॥

शब्दार्थ

एकः—एक; सङ्कल्पितः—प्रार्थना की थी; पुत्रः—पुत्र; सप्त सप्त—उनचास; अभवन्—हो गये; कथम्—किस प्रकार; यदि—यदि; ते—तुम्हारे द्वारा; विदितम्—ज्ञात; पुत्र—हे पुत्र!; सत्यम्—सच सच; कथय—कहो; मा—मत (बोलना); मृषा—झूठ।

मैंने केवल एक पुत्र के लिए प्रार्थना की थी, किन्तु मैं देखती हूँ कि ये तो उनचास हैं। यह किस तरह सम्भव हो सका? मेरे पुत्र इन्द्र! यदि तुम जानते हो तो मुझसे सच सच कहो। झूठ बोलने का प्रयास मत करना।

इन्द्र उवाच
अम्ब तेऽहं व्यवसितमुपधार्यागतोऽन्तिकम् ।
लब्धान्तरोऽच्छिदं गर्भमर्थबुद्धिर्न धर्मदृक् ॥ ७१ ॥

शब्दार्थ

इन्द्रः उवाच—इन्द्र ने कहा; अम्ब—हे माता; ते—तुम्हारा; अहम्—मैं; व्यवसितम्—व्रत; उपधार्य—समझकर; आगतः—आया; अन्तिकम्—पास ही; लब्ध—पाकर; अन्तरः—त्रुटि, दोष; अच्छिदम्—मैंने काट दिया; गर्भम्—गर्भ; अर्थ-बुद्धिः—स्वार्थवश; न—नहीं; धर्म-दृक्—धर्म-दृष्टि वाला।

इन्द्र ने उत्तर दिया—हे माता! स्वार्थ से अंधा होने के कारण मैंने धर्म से मुँह मोड़ लिया था। जब मुझे ज्ञात हुआ कि आप आध्यात्मिक जीवन का महान् व्रत धारण कर रही हैं, तो मैं उसमें कोई त्रुटि निकालना चाहता था। और जब मुझे त्रुटि मिल गई तो मैं आपके गर्भ में प्रविष्ट हो गया और मैंने गर्भ को खंड खंड कर दिया।

तात्पर्य : जब इन्द्र की मौसी दिति ने बिना हिचक के इन्द्र को अपना मन्तव्य कह सुनाया तो इन्द्र ने अपना मन्तव्य बताया। इस प्रकार दोनों परस्पर शत्रु न रहकर एक दूसरे से सत्य बोलने लगे। विष्णु की संगति के प्रभाव से ही ऐसा होता है। *श्रीमद्भागवत*(५.१८.१२) में कहा गया है—*यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिंचना सर्वैः गुणैस्तत्र समासते सुराः*—यदि किसी में भक्ति की प्रवृत्ति

जागृत होती है और वह परमेश्वर की पूजा करके शुद्ध बन जाता है, तो उसके शरीर में निश्चय ही समस्त श्रेष्ठ गुण प्रकट होते हैं। विष्णु की पूजा के स्पर्श से दिति तथा इन्द्र दोनों शुद्ध हो गये।

कृत्तो मे सप्तधा गर्भ आसन्सप्त कुमारकाः ।
तेऽपि चैकैकशो वृक्णाः सप्तधा नापि मम्रिरे ॥ ७२ ॥

शब्दार्थ

कृत्तः—काटा गया; मे—मेरे द्वारा; सप्त-धा—सात खण्डों में; गर्भः—गर्भ (भ्रूण); आसन्—हो गया; सप्त—सात; कुमारकाः—शिशु; ते—वे; अपि—यद्यपि; च—भी; एक-एकशः—प्रत्येक; वृक्णाः—काटे गये; सप्त-धा—सप्त खण्डों में; न—नहीं; अपि—अब तक; मम्रिरे—मरे।

सर्वप्रथम मैंने गर्भस्थ शिशु को सात खण्डों में काट डाला जिससे सात शिशु बन गये। तब फिर मैंने प्रत्येक शिशु के भी सात सात खण्ड कर दिये। किन्तु परमेश्वर के अनुग्रह से इनमें से कोई भी मरा नहीं।

ततस्तत्परमाश्चर्यं वीक्ष्य व्यवसितं मया ।
महापुरुषपूजायाः सिद्धिः काप्यानुषङ्गिणी ॥ ७३ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; तत्—वह; परम-आश्चर्यम्—महान् आश्चर्य; वीक्ष्य—देखकर; व्यवसितम्—यह निश्चय किया गया; मया—मेरे द्वारा; महा-पुरुष—भगवान् विष्णु की; पूजायाः—पूजा का; सिद्धिः—फल; कापि—कुछ; आनुषङ्गिणी—आनुसंगिक, गौण।

हे माता! जब मैंने देखा कि उनचासों पुत्र जीवित हैं, तो निश्चित ही मुझे आश्चर्य हुआ। मुझे विश्वास हो गया कि यह आपके द्वारा विष्णु-उपासना के लिए की गई नियमित भक्तिपूर्ण सेवा का ही आनुषंगिक फल है।

तात्पर्य : भगवान् विष्णु की सेवा में संलग्न व्यक्ति के लिए कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है। यह वास्तविकता है। *भगवद्गीता* (१८.७८) में कहा गया है—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

"जहाँ योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हैं और जहाँ धनुषधारी अर्जुन है, वहीं शाश्वत राजलक्ष्मी,

समस्त ऐश्वर्य, विजय, विलक्षण शक्ति तथा नीति है, ऐसा मेरा मत है।'' योगेश्वर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, जो अपनी इच्छानुसार जो भी चाहें कर सकते हैं। यह प्राप्ति परमेश्वर की सर्वशक्तिमत्ता है। ईश्वर को प्रसन्न कर लेने वाले के लिए कोई भी उपलब्धि आश्चर्यजनक नहीं। उसके लिए सब कुछ सम्भव है।

आराधनं भगवत ईहमाना निराशिषः ।
ये तु नेच्छन्त्यपि परं ते स्वार्थकुशलाः स्मृताः ॥ ७४॥

शब्दार्थ

आराधनम्—उपासना; भगवतः—श्रीभगवान् की; ईहमानाः—वांछित; निराशिषः—भौतिक इच्छाओं से रहित, निष्काम; ये—जो; तु—निस्सन्देह; न इच्छन्ति—कामना नहीं करते; अपि—भी; परम्—मुक्ति; ते—वे; स्व-अर्थ—अपने हित में; कुशलाः—कुशल, दक्ष; स्मृताः—माने हुए।

यद्यपि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की उपासना में ही निरत रहने वालों को भगवान् से किसी भी प्रकार की भौतिक इच्छा, यहाँ तक कि मुक्ति की भी कामना नहीं रहती, तो भी भगवान् कृष्ण उनकी समस्त कामनाओं को परिपूर्ण करते हैं।

तात्पर्य : जब ध्रुव महाराज को भगवान् विष्णु के दर्शन हुए तो उन्होंने भगवान् से कोई वर नहीं माँगा क्योंकि वे भगवान् के दर्शन से ही पूर्णतः तुष्ट थे। तो भी भगवान् इतने दयालु हैं कि उन्होंने महाराज ध्रुव को ब्रह्माण्ड के सर्वश्रेष्ठ लोक, ध्रुवलोक, भेज दिया क्योंकि प्रारम्भ में उन्होंने अपने पिता के राज्य से भी बड़े राज्य की कामना की थी। अतः शास्त्र का कथन है—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।

तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥

''उदार बुद्धि वाला व्यक्ति, चाहे सकाम हो, निष्काम हो या मुक्ति का इच्छुक हो, उसे सब प्रकार से परब्रह्म की उपासना करनी चाहिए।'' (*भागवत २.३.१०*)। मनुष्य को चाहिए कि वह पूर्णभक्ति में निरत हो। तब, भले ही वह निष्काम क्यों न हो, उसकी पूर्व इच्छित कामनाओं की पूर्ति भगवान् की उपासना मात्र से हो जाती है। वास्तविक भक्त मुक्ति की भी कामना नहीं करता

(*अन्याभिलाषिता शून्यम्*)। किन्तु भगवान् अपने भक्त को अक्षय ऐश्वर्य प्रदान करके उसकी कामना पूरी करते हैं। कर्मी का ऐश्वर्य नष्ट हो जाता है, किन्तु भक्त का ऐश्वर्य अविनश्वर है। भक्त ज्यों ज्यों अधिक भक्ति करता है त्यों त्यों उसका ऐश्वर्य बढ़ता जाता है।

आराध्यात्मप्रदं देवं स्वात्मानं जगदीश्वरम् ।
को वृणीत गुणस्पर्शं बुधः स्यान्नरकेऽपि यत् ॥ ७५ ॥

शब्दार्थ

आराध्य—उपासना के बाद; आत्म-प्रदम्—जो अपने आपको अर्पित करता है; देवम्—भगवान् को; स्व-आत्मानम्—परम-प्रिय; जगत्-ईश्वरम्—ब्रह्माण्ड के स्वामी को; कः—क्या; वृणीत—चुनेगा; गुण-स्पर्शम्—भौतिक सुख; बुधः—बुद्धिमान मनुष्य; स्यात्—है; नरके—नरक में; अपि—भी; यत्—जो।

समस्त आकांक्षाओं का अन्तिम लक्ष्य भगवान् का दास बनना है। यदि कोई बुद्धिमान मनुष्य अपने भक्तों को आत्मसमर्पित करने वाले परम प्रिय भगवान् की सेवा करता है, तो वह भौतिक सुख की कामना कैसे कर सकता है, जो नरक में भी प्राप्य है?

तात्पर्य : कोई बुद्धिमान व्यक्ति मात्र भौतिक सुख की प्राप्ति के लिए भक्त बनना नहीं चाहेगा। यही भक्त की परीक्षा है। जैसाकि श्री चैतन्य महाप्रभु का उपदेश है—

न धनं न जनं न सुन्दरी कवितां वा जगदीश कामये।

मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद् भक्तिरहैतुकी त्वयि॥

''हे परम शक्तिमान ईश्वर! मुझे न तो धनसंचय की इच्छा है, न मैं सुन्दर स्त्रियों की कामना करता हूँ, न ही मुझे अनेक अनुयायी चाहिए। मैं तो जन्म-जन्मांतर आपकी अहैतुकी भक्ति की कामना करता हूँ।'' शुद्ध भक्त ईश्वर से धन, दास, सुन्दर पत्नी, यहाँ तक कि मुक्ति की भी कभी कामना नहीं करता। किन्तु भगवान् वचन देते हैं—*योगक्षेमं वहाम्यहम्*—''मैं स्वेच्छा से अपनी सेवा के लिए प्रत्येक आवश्यक वस्तु लाता हूँ।''

तदिदं मम दौर्जन्यं बालिशस्य महीयसि ।
क्षन्तुमर्हसि मातस्त्वं दिष्ट्या गर्भो मृतोत्थितः ॥ ७६ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; इदम्—यह; मम—मुझ; दौर्जन्यम्—कुकृत्य; बालिशस्य—मूर्ख का; महीयसि—हे श्रेष्ठ स्त्री; क्षन्तुम् अर्हसि—कृपा करके क्षमा करें; मातः—हे माता; त्वम्—तुम; दिष्ट्या—सौभाग्य से; गर्भः—गर्भस्थ शिशु; मृत—मारा हुआ; उत्थितः—जीवित हो उठा।

हे माता, हे महीयसी! मैं मूर्ख हूँ। मैंने जो भी पाप किये हैं उसके लिए आप मुझे क्षमा प्रदान करें। आपके उनचासों पुत्र बिना किसी क्षति के आपकी भक्ति के कारण ही उत्पन्न हुए हैं। मैंने शत्रु होने के नाते उनको खण्ड खण्ड कर दिया था, किन्तु आपकी परम भक्ति के कारण वे मरे नहीं।

श्रीशुक उवाच
इन्द्रस्तयाभ्यनुज्ञातः शुद्धभावेन तुष्टया ।
मरुद्भिः सह तां नत्वा जगाम त्रिदिवं प्रभुः ॥ ७७ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इन्द्रः—इन्द्र; तया—उस (दिति) से; अभ्यनुज्ञातः—अनुमति पाकर; शुद्ध-भावेन—शुद्ध आचरण से; तुष्टया—संतुष्ट होकर; मरुद्भिः सह—मरुतों के साथ; ताम्—उसको; नत्वा—नमस्कार करके; जगाम—चला गया; त्रि-दिवम्—स्वर्गलोक को; प्रभुः—भगवान्।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा—दिति इन्द्र के इस उत्तम आचरण से अत्यन्त प्रसन्न हुई। तब इन्द्र ने अपनी मौसी को अत्यन्त आदरपूर्वक प्रणाम किया और उसकी आज्ञा से अपने मरुद्गण भाइयों सहित स्वर्गलोक को चला गया।

एवं ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
मङ्गलं मरुतां जन्म किं भूयः कथयामि ते ॥ ७८ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; ते—तुमको; सर्वम्—सब कुछ; आख्यातम्—कह सुनाया; यत्—जो; माम्—मुझसे; त्वम्—तुमने; परिपृच्छसि—पूछा; मङ्गलम्—शुभ, कल्याणकारी; मरुताम्—मरुतों का; जन्म—उत्पत्ति; किम्—क्या; भूयः—आगे; कथयामि—कहूँगा; ते—तुम से।

हे राजा परीक्षित! मैंने यथासम्भव तुम्हारे द्वारा पूछे गये प्रश्नों, विशेष रूप से मरुतों के इस शुद्ध मंगलकारी वर्णन, का उत्तर दिया। अब तुम आगे जो पूछना चाहते हो पूछो, मैं उसे भी विस्तार से बताऊँगा।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के छठे स्कंध के अन्तर्गत ''राजा इन्द्र का वध करने के लिए दिति का व्रत'' नामक अठारहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।